इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम एच डी-21
मीरा का विशेष अध्ययन

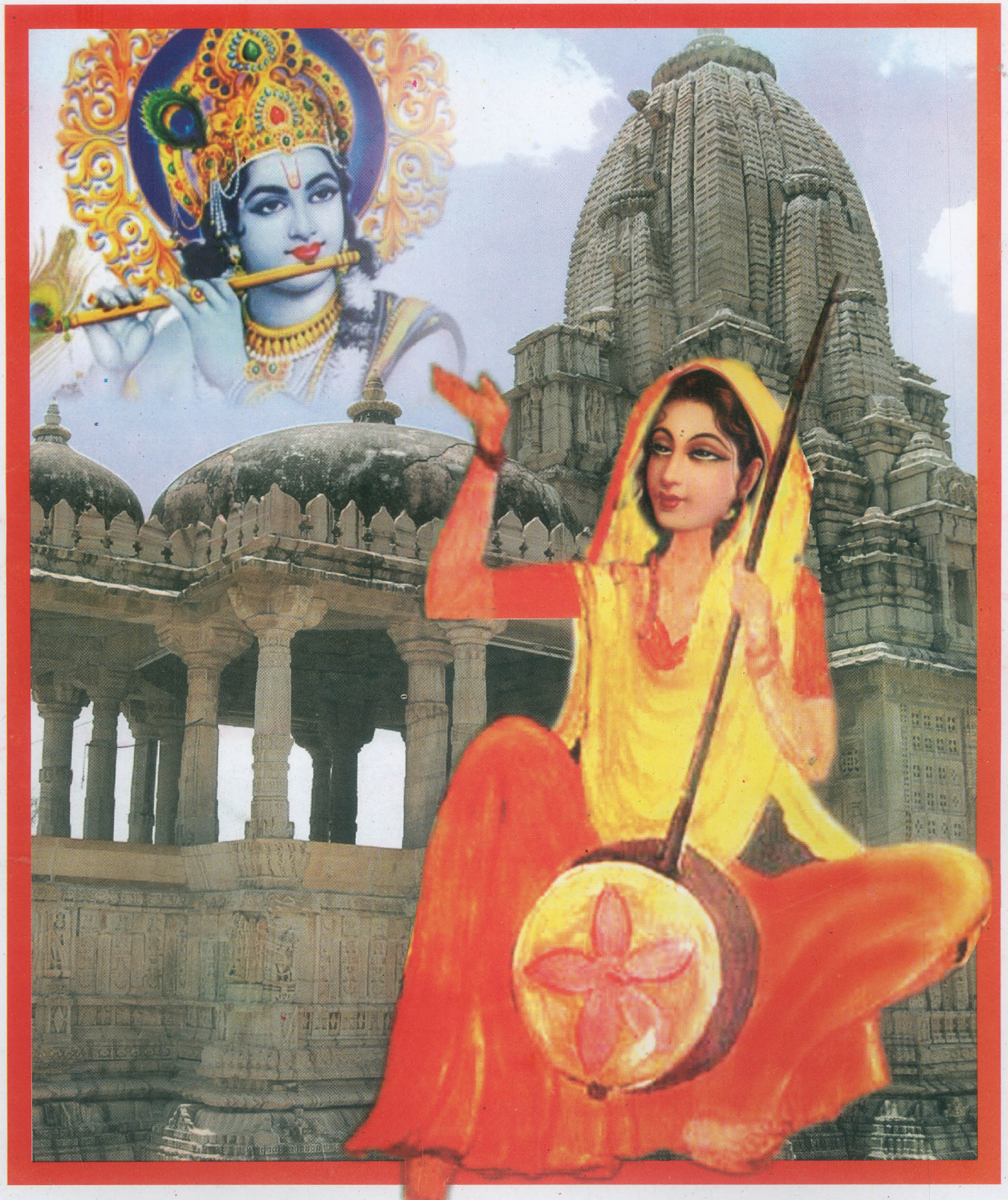

मीरा की भक्ति भावना

2

"शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्गगत विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।"

– इन्दिरा गांधी

"Education is a liberating force, and in our age it is also a democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances."

– Indira Gandhi

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम एच डी -21
मीरा का विशेष अध्ययन

खंड

2
मीरा की भक्ति भावना

इकाई 6

मीरा के कृष्ण 5

इकाई 7

मीरा की भक्ति का स्वरूप 21

इकाई 8

मीरा की प्रेमभावना 36

इकाई 9

मध्यकालीन भारतीय भक्त कवयित्रियाँ और मीरा 53

इकाई 10

मीरा परवर्ती हिंदी की भक्त कवयित्रियाँ 71

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें 88

विशेषज्ञ समिति

प्रो. नित्यानंद तिवारी (सेवानिवृत्त)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. मैनेजर पाण्डेय (सेवानिवृत्त)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

(स्वर्गीय) प्रो. कमला प्रसाद

प्रो. चन्द्रकला पांडेय
कलकत्ता विश्वविद्यालय
कोलकाता

प्रो. ए. अरविन्दाक्षन
कोचीन विज्ञान एवं तकनीकी
विश्वविद्यालय, कोचीन

प्रो. नूरजहाँ बेगम
केंद्रीय विश्वविद्यालय
हैदराबाद

संकाय सदस्य
प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रो. रीतारानी पालीवाल (सेवानिवृत्त)
प्रो. सत्यकाम
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
प्रो. विमल थोरात (सेवानिवृत्त)
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. जितेन्द्र श्रीवास्तव

पाठ्यक्रम संकल्पना
प्रो. रामबक्ष
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी

पाठ्यक्रम निर्माण

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. संजीव कुमार दिल्ली कालेज ऑफ आर्ट्स एंड कामर्स, नई दिल्ली	6, 7
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली	7 (संशोधन एवं परिवर्द्धन)
प्रो. चंद्रा सदायत एनसीईआरटी, नई दिल्ली	8 एवं 9
डॉ. जीवन सिंह 1/14 अरावली विहार, अलवर (राजस्थान)	10

पाठ्यक्रम संपादक
प्रो. मैनेजर पाण्डेय (सेवानिवृत्त)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

पाठ्यक्रम समन्वयक
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

खंड संपादक
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी

सहयोग
सुश्री रेखा कुर्रे, आर.टी.ए.
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

सचिवालयीय सहयोग
सुश्री हेमलता देवी
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

आवरण
अरविन्दर चावला

मुद्रण निर्माण

श्री सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

नवम्बर, 2014

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2014

ISBN-978-81-266-6819-4

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110 068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सुनैना कुमार, निदेशक (मानविकी विद्यापीठ) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : राजश्री कम्प्यूटर्स, वी–166ए, भगवती विहार, (नजदीक सेक्टर 2 द्वारका), उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059

मुद्रित : आकाशदीप प्रिंटर्स, 20–अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली–110002

खण्ड 2 का परिचय

यह खंड इस पाठ्यक्रम का द्वितीय खंड है। इस पाठ्यक्रम में खंड-2 में, **'मीरा की भक्ति भावना'** पर प्रकाश डाला गया है। मीरा की भक्तिभावना से संबद्ध इस खंड में कुल 5 इकाइयाँ प्रस्तुत की गई हैं।

इस खंड की पहली इकाई (इकाई-6) **'मीरा के कृष्ण'** है। इस इकाई में भारतीय चिंतन परंपरा में कृष्ण के चरित्र के विकास को विश्लेषित किया गया है। साथ ही, विद्यापति, सूरदास और रसखान के कृष्ण भक्ति संबंधी दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई में मीरा के कृष्ण की उपासना के विविध रूपों पर भी विचार किया गया है। इस संदर्भ में मीरा के कृष्ण में सगुण और निर्गुण का संगम, मन मोहन की छवि, मीरा के नटवर का उत्सवी रूप, मीरा की कृष्ण मिलन की परिकल्पना, मीरा के कृष्ण वियोग का दर्द, मीरा के नट नागर की लीला तथा मीरा के वस्तु जगत और चेतना जगत में कृष्ण की चर्चा की गई है।

इस खंड की दूसरी इकाई (इकाई-7) **'मीरा की भक्ति का स्वरूप'** है। इसमें मीरा की मधुरा भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। इस इकाई में प्रमुख रूप से भक्ति के स्वरूप और दर्शन, मीरा की स्वाभाविक भक्ति, मीरा की मधुरा भक्ति, मीरा की भक्ति का रहस्यात्मक स्वरूप, मीरा की भक्ति का शास्त्रीय स्वरूप, मीरा की भक्ति में वृंदावन का महत्व, कृष्ण लीला की रसिक अनुभूति और मीरा के आराध्य के बारे में विस्तार से विचार किया गया है।

इस खंड की तीसरी इकाई (इकाई-8) है। इस इकाई में **'मीरा की प्रेमभावना'** की चर्चा की गई है। इस इकाई में मीरा की प्रेमभावना में छिपे उस विद्रोह को भी स्पष्ट किया गया है जो सामन्ती व्यवस्था वाले समाज के मूल्यों और परंपराओं के प्रति मीरा ने किया था। इसके साथ-साथ मीरा के प्रेमालम्बन, मीरा की सौन्दर्य-सृष्टि, मीरा की प्रेमभावना के विविध आयाम और कृष्ण भक्ति काव्य परंपरा तथा मीरा की प्रेमभावना के वैशिष्ट्य की भी चर्चा की गई है।

इस खंड की चौथी इकाई (इकाई-9) **'मध्यकालीन भारतीय भक्त कवयित्रियाँ और मीरा'** है। इसमें मीरा के अतिरिक्त मध्यकाल की अन्य भारतीय भक्त कवयित्रियों की चर्चा की गई है। मध्यकालीन भारतीय भक्त कवयित्रियों में प्रमुख रूप से आंदाल, अक्क महादेवी, मुक्ताबाई, जनाबाई, बहिणाबाई और ललद्यद के जीवन परिचय के साथ उनकी कविताओं की विशेषताओं को भी बताया गया है। इस इकाई के अध्ययन से आप मीरा से इतर अन्य मध्यकालीन भक्त कवयित्रियों की साहित्यिक विशिष्टताओं को जान सकते हैं।

इस खंड की अंतिम इकाई (इकाई-10) **'मीरा परवर्ती हिन्दी की भक्त कवयित्रियाँ'** है। इसमें मीरा के समय की हिन्दी की भक्त कवयित्रियों की चर्चा की गई है। मीरा के युग में जो भक्त कवयित्रियाँ थी, उनमें राजघराने से संबंधित भक्त कवयित्रियों में प्रमुख रूप से महारानी सोन कुँवरि, वृषभान कुँवरि महारानी, ब्रजदासी बाँकावत, सुंदर कुँवरि, छत्र कुँवरि रानी, जाम सुता प्रताप कुँवरि, रतन कुँवरि बाई, गिरिराज कुँवरि, बाघेली विष्णु प्रसाद आदि भक्त कवयित्रियाँ प्रमुख हैं। इस इकाई में इन हिन्दी की भक्त कवयित्रियों के काव्य की विशेषताओं के साथ-साथ उनका जीवन परिचय भी दिया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य भक्त कवयित्रियों में बीराँ, बनीठनी, तुलछयराय आदि का जीवन परिचय और उनकी कविताओं के बारे में जानकारी दी गई है। साथ ही साथ साधारण जन समुदाय से आने वाली संत भक्त कवयित्रियों में गंगाबाई, ताज, बीवी रत्न कुँवरि, चंद्र सखी, प्रेम सखी, उमा, सहजोबाई और दयाबाई का भी उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार यह खंड संपन्न होता है। इस खंड के अंत में कुछ आवश्यक उपयोगी ग्रंथों की सूची दी गई है। इस खंड में निहित संकल्पनाओं का अधिक विस्तार और गहनता से अध्ययन करने के लिए आप पुस्तकालय में जाकर इन उपयोगी संदर्भ पुस्तकों का अध्ययन कर सकते हैं।

शुभकामनाओं के साथ!

इकाई 6 मीरा के कृष्ण

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 भारतीय चिंतन परम्परा में कृष्ण

6.3 विद्यापति सूरदास और रसखान का दृष्टिकोण

6.4 कृष्ण भक्ति और स्त्री

6.5 मीरा के कृष्ण में सगुण और निर्गुण का संगम

6.6 मन मोहन की छवि

6.7 मीरा के नटवर का उत्सवी रूप

6.8 मीरा की कृष्ण मिलन की परिकल्पना

6.9 मीरा में कृष्ण वियोग का दर्द

6.10 भक्त वत्सल श्री कृष्ण

6.11 मीरा के नट नागर की लीला

6.12 मीरा के वस्तु जगत और चेतन जगत में कृष्ण

6.13 सारांश

6.14 अभ्यास प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- साहित्य में वर्णित कृष्ण की चारित्रिक विशेषताओं को समझ सकेंगे;
- कृष्ण से जुड़े हुए आख्यान को समझ सकेंगे;
- मीरा की कृष्ण उपासना पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- लीलाओं का विकास और कृष्ण के स्वरूप में हुए परिवर्तन को समझ सकेंगे; और
- भक्तिकाल के मानवीय पहलू को भी विवेचित कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

कृष्ण मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के सर्वाधिक लोकप्रिय पात्र हैं। हिन्दी साहित्य में उनके चरित्र का क्रमशः विकास हुआ है। मीरा से पूर्व लोक और शास्त्र में कृष्ण की छवि, निर्मित एवं स्वीकृत हो चुकी थी। कृष्ण ईश्वर के अवतार माने गए हैं। वे यहाँ आकर जो भी कर्म करते हैं, वह उनकी "लीला" है। कृष्ण की लीला अपरम्पार है। उसे सामाजिक मूल्यों से

हम नहीं समझ सकते। अतः कृष्ण के साथ अवतारवाद और लीलावाद की धारणा जुड़ी हुई है। अवतारों के रूप में राम और कृष्ण सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। विचारकों का मानना है कि इन अवतारों में मानवीय संभावनाओं की सघन अभिव्यक्ति हुई है। सामान्य मनुष्य जो कर्म नहीं कर सकता, परन्तु करना चाहता है, वे सभी कार्य अवतारी पुरुष लीलाओं के द्वारा कर जाते हैं। लीला के कर्म तर्क से परे हैं। मध्यकालीन कवियों ने कृष्ण के चरित्र में अधिक रुचि दिखलाई है। कृष्ण के चरित्र में परस्पर विरोधी भावों का समन्वय मिलता है। प्राचीन भारत की वैदिक और लौकिक, दोनों परंपराओं से उनका मध्यकालीन रूप निर्मित हुआ है। मीरा जिस कृष्ण की आराधना करती हैं, वे यही मध्यकालीन कृष्ण हैं।

6.2 भारतीय चिंतन परंपरा में कृष्ण

मीरा के कृष्ण को समझने के लिए पहले हमें भारतीय चिंतन परंपरा में कृष्ण के चरित्र के विकास को जानना आवश्यक है। यदि हम वैदिक साहित्य पर विचार करते हैं, तो कृष्ण का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। यहाँ कृष्ण के दो रूप मिलते हैं, एक आंगिरस कृष्ण, जो अपने पुत्रों के आरोग्य हेतु अश्विनी कुमारों का आह्वान करते हैं। दूसरे कृष्ण एक असुर हैं, जिन्हें इन्द्र पराजित करते हैं। इन दोनों रूपों का कोई सामंजस्य हुआ या नहीं हुआ, परन्तु मध्यकाल तक यह धारणा तो पहुँच ही गई थी कि कृष्ण, इन्द्र को पसंद नहीं करते। इन्द्र के गर्व को चूर करने के लिए कृष्ण ने गोवर्धन की पूजा प्रारंभ की थी। इस कृष्ण का मध्यकालीन कृष्ण भक्ति से कोई संबंध है या नहीं, कहा नहीं जा सकता। मीरा के कृष्ण का भी इस वैदिक कृष्ण से कोई संबंध जान नहीं पड़ता। बौद्ध और जैन परंपराओं में भी कृष्ण का उल्लेख मिलता है। इन सब कथाओं का हालाँकि मीरा के कृष्ण से सीधा संबंध नहीं है, तथापि मीरा के कृष्ण को समझने के लिए यह जानकारी उपयोगी हो सकती है।

कृष्ण के बारे में "महाभारत" में अनेक वृत्तांत मिलते हैं। "महाभारत" में कृष्ण, पाण्डवों के समर्थक, कूटनीति में माहिर, द्रौपदी के मददगार, अर्जुन के रथ के सारथि, कौरव सभा में पाण्डवों के दूत थे। "महाभारत" के युद्ध में कृष्ण की प्रमुख एवं महत्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने कई दस्युओं को मारा, कई राजाओं को पराजित किया, रुक्मिणी का हरण, आदि अनेक कार्य किए थे। देवताओं के द्वारा उन्हें अवध्यता का वरदान मिला हुआ था। ब्रजेश्वर वर्मा का मत है कि "महाभारत" में कृष्ण के ऐश्वर्य और उनके देवत्व का प्रचुर वर्णन है, परन्तु उनके लालित्य और माधुर्य का कोई संकेत नहीं मिलता। महाभारत, उनके गोप जीवन और गोपी प्रेम के संदर्भ में सर्वथा मौन है। इसके बाद कृष्ण के जीवन के बारे में पुराणों, ग्रन्थों, काव्यों, नाटकों में अनेक प्रसंग मिलते हैं। "गीता" में कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं। यहाँ कृष्ण एक दार्शनिक के रूप में सामने आते हैं। पुराणों में भी कृष्ण की अनेक व्याख्याएँ मिलती हैं, जिनमें लौकिक और आध्यात्मिक स्तर के अनेक संदर्भ हैं। "पद्मपुराण" में गोपी वल्लभ कृष्ण की आध्यात्मिक व्याख्या है। "ब्रह्म वैवर्त पुराण" में सांख्य दर्शन के परिप्रेक्ष्य में प्रकृति और पुरुष की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है।

कृष्ण की इस शास्त्रीय छवि के साथ लोक में कृष्ण की एक अलग छवि थी, जिसके संकेत "गाहा सप्तशती" में मिलते हैं। ब्रजेश्वर वर्मा का अनुमान है कि गोपाल कृष्ण मूलतः शूरसेन प्रदेश के सात्वत वृष्णिवंशी पशुपालक क्षत्रियों के कुल देवता थे और उनके क्रीड़ा कौतुक की मनोरंजक कथाएँ मौखिक रूप में लोक-प्रचलित थीं। इन लोक कथाओं का सामंजस्य जब कृष्ण के शास्त्रीय स्वरूप में हुआ, तब जाकर मध्यकाल के नायक कृष्ण का उदय हुआ। भक्तिकाल के कृष्ण का मूलाधार श्रीमद् भागवत को माना जाता है। इसमें लोक और शास्त्र का समन्वय मिलता है। भागवत् पुराण में कृष्ण की कथा तो मिलती है, परन्तु इसमें राधा का कहीं उल्लेख नहीं है। इसमें श्रीकृष्ण स्वयं भगवान है तथा अवतार नहीं अवतारी

है। इसलिए इनकी लीलाएँ भी रहस्यमय हैं। भागवत् पुराण का मूल कथ्य श्रीकृष्ण का पूर्ण ईश्वरत्व है। इसलिए इसमें कृष्ण का जन्म नहीं होता है।

मीरा कृष्ण को अपना आराध्य,रक्षक और परमात्मा मानती हैं। मीरा के ये विचार भागवत की परंपरा से जुड़ते हैं। कृष्ण के साथ राधा का अटूट संबंध है, यह विचार भागवत में नहीं है। कृष्ण राधा से प्रेम करते हैं और राधा गोपियों में सर्वश्रेष्ठ है, ऐसे विचार नारद पांचरात्र में मिलते हैं। कृष्ण के "राधावल्लभ" रूप का शास्त्रीय विवेचन इसके बाद की अनेक रचनाओं में मिलता है।

इसके पश्चात् वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण भक्ति को नई दिशा दी। इन दोनों आचार्यों का दर्शन ही नहीं अपितु क्षेत्र भी अलग-अलग हैं। चैतन्य महाप्रभु का प्रभाव पूर्वी भारत में अधिक रहा, जबकि वल्लभाचार्य का प्रभाव पश्चिमी भारत में - विशेषतः हिन्दी प्रांतों में रहा।

चैतन्य के अनुयायी भक्तों ने भी वृंदावन को उपासना भूमि बनाया। इस पंथ में रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी और जीव गोस्वामी ने भक्ति का क्रमबद्ध दर्शन प्रतिपादित किया। गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय में पर ब्रह्म शक्ति, मायाशक्ति और विलासशक्ति सत्ता को स्वीकार किया गया है। विलास शक्ति के दो रूप प्रभाव विलास और वैभव विलास कहे गए हैं। प्रभाव विलास के कारण कृष्ण एक होकर प्रत्येक गोपी के साथ लीला करते हैं। दूसरा वैभव विलास जिसके माध्यम से वे चतुर्व्यूह का रूप धारण करते हैं। व्यूह, प्रेम और लीला का प्रसार है। वल्लभ ने राधा के बाहरी रूप को विस्तार दिया है तो चैतन्य ने उसमें भावावेग को प्रयोजनीय माना है। चैतन्य मतानुयायी गोपी भाव से भगवान का भजन किया करते हैं। इन दोनों आचार्य के भक्ति की पद्धति में अंतर है। चण्डीदास, जयदेव, विद्यापति इस परंपरा से आते हैं।

डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने राधा कृष्ण की भक्ति के शास्त्रीय स्वरूप की परंपरा का सार-संक्षेप करते हुए लिखा है कि निम्बार्काचार्य, चैतन्य महाप्रभु और वल्लभाचार्य इन तीनों आचार्यों ने राधा कृष्ण की भक्ति को दार्शनिक आधार प्रदान किया। निम्बार्काचार्य के अनुसार कृष्ण सर्वोच्च ब्रह्म हैं और राधा सौन्दर्य ज्योतिपुंज हैं, कृष्ण के वामाग में विराजमान है। हजारों सखियों से सेवित हैं तथा सदा मनोवांच्छित वस्तु प्रदायी हैं। कृष्ण की आराधना ब्रह्मा, शिव आदि भी करते हैं। ध्यान में रखना चाहिए कि नाथद्वारा में निम्बार्काचार्य का मत ही मान्य है। नाथद्वारा में मीरा को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा गया था।

चैतन्य महाप्रभु भावुकता और आत्मिक उल्लास के मूर्तरूप थे। उनके कुल आठ श्लोक ही मिलते हैं। उनके अनुसार कृष्ण देवाधिदेव हैं, मूर्तिमान सौदर्य हैं, प्रेम प्रेरक हैं। कृष्ण की लीला गोलोक में नित्य है। कृष्ण की मूल शक्ति प्रेम है, जो आनंद का कारण है। यही प्रेम भक्त के चित्त में स्थिर होकर महाभाव बन जाता है। महाभाव ही राधा है।

वल्लभाचार्य के अनुसार कृष्ण सर्वोच्च ब्रह्म हैं। वे सच्चिदानंद और पुरुषोत्तम हैं। भक्ति के लिए भगवान का अनुग्रह आवश्यक है। ईश्वर अनुग्रह से ही प्रेमाभक्ति की प्राप्ति होती है। प्रेमाभक्ति की प्राप्ति की तीन अवस्थाएँ हैं - प्रेम, आसक्ति और व्यसन। राधा कृष्ण की लीला में प्रवेश ही भक्त का लक्ष्य है, जो भगवान के अनुग्रह से संभव है।

इस दार्शनिक चिंतन के परिणाम स्वरूप जयदेव, चण्डीदास, विद्यापति, सूरदास, रसखान आदि अनेक कवि हुए, जिन्होंने मीरा से पहले कृष्ण की भक्ति की कविताएँ लिखीं और कृष्ण के चरित्र को ठोस रूप प्रदान किया।

6.3 विद्यापति, सूरदास और रसखान का दृष्टिकोण

विद्यापति के माधव और राधा, शृंगार और प्रेम की अकुंठ अभिव्यक्ति हैं। वृंदावन के करील की कुंज की जगह मिथिला की अमराइयों में कृष्ण और राधा के स्नेह की प्रथम किरण फूटती है। विद्यापति के यहाँ कृष्ण के स्थूल और मांसल सौन्दर्य में भावावेग की प्रखरता है। वे निश्चित रूप से जीवन से उद्धार करने वाले मसीहा नहीं हैं अपितु जीवन के रस को छक कर पीने वाले नायक हैं। जिसमें मिलन और संयोग की घनिष्ठता है। वहाँ विरह में दर्द की आवाज है। उनकी चेतना होश खोती है और बेहोशी के आलम को सहती है। चैतन्य की भक्ति में भक्त, मूर्च्छित होने की अवस्था में पहुँच जाते हैं, विद्यापति पर उसका गहरा असर है, लेकिन उसका संदर्भ बिल्कुल लौकिक है। उसमें किसी प्रकार की अतिमानवीय सीमा का स्पर्श नहीं है। लज्जा, शर्म और हया के झरोखे के भीतर से सौन्दर्य का आकर्षण मनोभाव को चंचल बनाता है। विद्यापति के कृष्ण और राधा दोनों में यह तरलता है -

सरसिज बिनु सर सर बनु सरसिज
कि सरसिज बिनु सूरे
जीवन विनु तन तन बिनु जीवन
कि जीवन पिय दूरे

सूरदास भक्तों में श्रीकृष्ण के सखा उद्धव के अवतार कहे गए हैं। सूर के यशोदा नंदन में प्रेम की तल्लीनता है। हृदय की रसात्मक अभिव्यक्ति है। सूर के दृष्टिकोण में गहरी बौद्धिकता है जिससे उनके कृष्ण खास अपने समय के ज्ञान और प्रेम के द्वंद्व की चुनौतियों को लेकर चलते हैं। लीला की रूपरेखा को उन्होंने भागवत से ग्रहण किया है, लेकिन उसमें जीवन की मार्मिकता के भीतर लोकजीवन की संवेदना की गहरी छाप है। सूरसागर में कृष्ण जन्म से लेकर कृष्ण के मथुरा जाने तक की कथा है। विनय के पदों में आत्म समर्पण और निवेदन है। पारिवारिक जीवन के बीच कृष्ण के जन्म और बाललीला का वर्णन वात्सल्य संबधी पदों में हैं। माखनचोर, गोचारण के प्रसंग, मुरलीवादन आदि में किशोर कृष्ण की तरुण मानसिकता का अंकन है। करील कुंजों में वृंदावन के मनोरम वातावरण में चाँदनी रात में यमुना के कछार पर रास की अदभुत लीला है। विशाल नेत्रों वाली तथा माथे पर रोली की बिंदी लगाने वाली राधा को देखते ही सूर के कृष्ण उस पर रीझ जाते हैं -

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
गये श्याम रवि तनया के तट अंग लसति चंदन की खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिये रोरी।
सूर श्याम देखत ही रीझै, बैन नैन मिलि परी ठगोरी।

सूरदास ने सूरसागर में कृष्ण की बाल लीलाओं का विस्तार से चित्रण किया है। इसके अलावा उन्होंने कृष्ण के गोचारण, किशोरावस्था एवं युवावस्था के प्रेम का मार्मिक चित्रण भी किया है। मीरा ने सूरदास के कृष्ण से भिन्न रूपों को अपनी कविता में प्रस्तुत किया। मीरा ने कृष्ण को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत नहीं किया, उनका विवरण नहीं दिया, वरन् कृष्ण के विविध रूपों का उपयोग किया। कृष्ण के लोक प्रचलित रूप की विविध क्रियाओं और चेष्टाओं को प्रासंगिक रूप में उद्धृत किया, ताकि मीरा अपने मनोभावों को उन प्रसंगों में अभिव्यक्त कर सके। सूरदास ने कृष्ण को लोकप्रिय बनाया, ताकि मीरा उसको आसानी से सहृदय -संवेद्य बना सके। सूर के बिना मीरा के कृष्ण की कल्पना नहीं की जा सकती। सूर की परंपरा में ही मीरा कृष्ण भक्त हो सकती हैं। सूरदास ने वात्सल्य और शृंगार रस

की कविताएँ लिखीं। जबकि मीरा ने अपनी पीड़ा और भक्ति के लिए कृष्ण के आलंबन का इस्तेमाल किया।

रसखान ने वल्लभ संप्रदाय में विद्ठलनाथ जी से दीक्षा ग्रहण की थी। भावुकता, प्रीति और अनुराग की सरसता से इस कवि का काव्य सुगंधित है। उनमें गोपियों का सा भाव है। श्रीकृष्ण के सौन्दर्य के द्वारा शृंगार की मधुर अभिव्यक्ति उनमें मिलती है। उनके द्वारा रची प्रेम की अनुभूति हृदय को छूने वाली है। कृष्ण के बालरूप का चित्र हो अथवा मुरलीधर के युवावस्था का प्रसंग, थोड़े से शब्द में अंतस्तल को सराबोर कर देना रसखान की विशेषता है। ब्रजभूमि के प्रति उन्होंने जो कुछ लिखा है वह सच्चे प्रेम को मूर्तिमान करता है। उसमें गहन आत्मीयता है। वे कृष्ण की लकुटी और कमरिया पर सब कुछ न्योछावर करने को तैयार हैं -

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहुँ पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवौं निधि के सुख नंद की गाय चराय बिसारौं।।
नैनन सों रसखान सबै ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
केतक ही कल धौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं।।

6.4 कृष्ण भक्ति और स्त्री

भक्ति आंदोलन समानता के आदर्श को लेकर चलने वाला आंदोलन था। यह आंदोलन जाति और धर्म की कट्टरता को मिटाने का संदेश देता है। लेकिन इसमें नारी की स्थिति गौण बनी रही। नारी को यदि कुछ सहानुभूति मिली है तो कृष्ण भक्त कवियों से ही। इसीलिए कृष्ण भक्ति की ओर स्त्रियों का झुकाव स्वाभाविक रहा है। यही कारण है कि मीरा ने कृष्ण को अपना आराध्य माना है। वृंदावन के अतिरिक्त और किसी का द्वार स्त्रियों के लिए खुला नहीं था। कबीर बड़े विद्रोही थे, परंतु वे सामान्यतः नारी को नरक का कुंड तक कह देते थे। तुलसी का नारी विरोध जग जाहिर है। जायसी भी "तिरिया जाति मति हीन तुम्हारी" कह कर अपने भाव को प्रस्तुत कर देते हैं। एक सूरदास ही ऐसे कवि हैं जो इस विभेद से मुक्त रहे। जहाँ तक हो सका वे नारी स्वतंत्रता की तरफदारी करते रहे। कृष्ण ने भी जहाँ नारी के हृदय से खेला है उसकी आलोचना से भी सूरदास नहीं चूके हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि कृष्ण के साथ नारी का जुड़ाव केवल भक्ति के धरातल पर नहीं होता है। उपासना के रूप में ही गोपी, कृष्ण और राधा का संबंध नहीं बनता है बल्कि उसे संप्रदाय की सीमाओं में भी मान्यता मिली। कृष्ण का दरवाजा और अटारी महिलाओं को भी समान भाव से भक्त बनने की प्रेरणा देता है क्योंकि वे तो स्वयं में एक उत्सव हैं। उसे एकांतिक प्रेम द्वारा नहीं पाया जा सकता है। उसे पाने के लिए लीला में हिस्सा लेना जरूरी है। मीरा, अपने गिरधर से केवल उद्धार करने की गुहार नहीं करती है। वह उनके साथ सुख दुख को भी साझा करना चाहती है। इतनी आत्मीयता और अपनापन उसे सांवरिया के अतिरिक्त कहीं नहीं मिल सकता था। यही कारण है कि वे गोविंद के चरणों में सिर झुकाती हैं।

6.5 मीरा के कृष्ण में सगुण और निर्गुण का संगम

मीरा के काव्य में प्रेम और भक्ति की तन्मयता है। इसमें उन्होंने अपने प्राणों को जलाकर ऐसा रंग भर दिया है कि संप्रदाय की रेखाएँ धुँधली प्रतीत होती हैं। उनकी लगन इतनी तीव्र है कि सीमा में बँधना मुश्किल है। उसमें केवल प्रतीक्षा और हृदय की पीड़ा की आकुल पुकार है। उनके "गिरधर" शब्द में केवल आत्मीयता तथा विश्वास भरा हुआ है। नामों में उन्होंने कृष्ण के पर्याय का ही प्रयोग नहीं किया है अपितु सूफ़ी और ज्ञानमार्गी भक्तों की

शब्दावली को भी बेधड़क अपनाया है। उदाहरण के तौर पर वे कृष्ण को जोगी कहकर संबोधित करती हैं। उनसे प्रेम की भीख माँगती हैं। इसी तरह सूफियों के दीवानेपन की मस्ती भी उनमें मिलती है। पिया के ऊपर बलि बलि जाना सूफ़ी संतों की जानी पहचानी शब्दावली है। मीरा भी कहती हैं कि-

पीया बिनि रह्योइ न जाइ,
तन मन मेरो पिया पर बारुँ बार बार बलि जाई।

यह बलिहारी जाने का भाव सूफियों से तुलनीय है। भले ही हम इसे सूफियों का प्रभाव न मानें। प्रेम में मद मस्त होने का भाव मीरा की इन पंक्तियों में दृष्टिगत होता है।

मीरा के कृष्ण का गठन उनके वैचारिक चिंतन के मंथन से हुआ है। उसमें नाथपंथी अवधूत का वैराग्य, सूफियों की छलकती हुई प्रेम की गंगरी और कृष्ण का अनुपम सौंदर्य, सभी कुछ मिला जुला है। व्यक्ति और परम ईश्वर का नेह ही मीरा के लिए सब कुछ है। इसे नहीं पाकर वह बावली हो जाती है। यह मीरा की बौद्धिक सजगता का प्रमाण है कि भावुकता के चरम पर पहुँच कर भी कभी संकीर्णता का अंधानुसरण नहीं करती है।

मीरा का जोगिया कौन है, इस पर कई विद्वानों ने विचार किया है। जोगी के अनेक अर्थ किए गए हैं। उनपर नाथपंथ का प्रभाव माना गया है। तब भी मीरा में दार्शनिक अथवा साधनात्मक गूढ़ रहस्य नहीं है। उनका जोगी ब्रह्मांड की खोज में नहीं निकला है। वह भ्रमण करता है और प्रीत लगाकर फिर विस्मृत कर देता है। उसके रहने का कोई ठौर ठिकाना नहीं है। यहाँ जोगी का सामाजिक संदर्भ भी है। मध्यकाल में जोगी की भूमिका अनेक रूपों में प्रचलन में थी। वह शासक को सूचना देता था, जादू टोना करता था, बहू बेटियों के कोमल हृदय से खिलवाड़ करता था, इसलिए उससे दूर रहने की सलाह दी जाती थी। जोगी से अवैध रिश्तों के किस्से भी समाज में बहुत प्रचलित थे। मीरा ने अपने अंतर की पीड़ा को अभिव्यक्ति देने के लिए जोगी के रूप को अपनाया है। लेकिन उनका मंतव्य इतना ही था कि भावना से समर्पित होने के बाद भी उन्हें अपने प्रिय से कोई प्रतिफल नहीं मिलता। इसलिए वे जोगी को बार बार उलाहना देती हैं -

जोगिया सों प्रीत कियाँ दुख होइ।।
प्रीत कियाँ सुख ना मोरी सजनी जोगी मित न कोई।
राति दिवस कल नाहिं परत है, तु मिलियाँ बिन मोई।
ऐसी सूरत या जग मांही, फेरि न देखी सोई।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, मिलियाँ आनंद होई।।

मीरा जोगी से प्रेम करती है, परंतु वह यह कहना नहीं भूलती कि प्रेम करने से दुःख होता है। मीरा कृष्ण को कभी पाती नहीं। कृष्ण कभी उसे मिले ही नहीं। कृष्ण की झलक मिलती है। उनका आभास होता है और मीरा को दरद दीवानी बनाकर ओझल हो जाता है। ईश्वर मिलन की किसी संभावित वास्तविकता का मीरा ने चित्रण नहीं किया, उसे हर बार विरह, दुःख और पीड़ा ही मिली है और यह कहने से मीरा चूकती भी नहीं।

मीरा को तो ऐसी प्रियतम की तलाश है जो चित्त को आनंद से भर दे, जो जीवन को पार लगा दे, स्नेह के बदले में स्नेह दे, मधुर बात करके घात न करे, जो लगन के बाद छोड़ता नहीं। ऐसा लगता है कि मीरा निर्गुण जोगी और सगुण कृष्ण दोनों को एक तराजू में तोलती हैं। फिर इस निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि मन का मीत तो श्याम ही हो सकता है जो भीतर से जुड़ता है और हृदय को तृप्त कर सकता है -

जावादे जावादे जोगी किसका मीत।
सदा उदासी रहे मोरि सजनी नियर अटपटी रीत।

बोलत बचन मधुर से मानूँ जोरत नाहीं प्रीत।
मैं जाणूँ या पार निभैगी छांडि चले अधबीच।
मीरा के प्रभु स्याम मनोहर प्रेम पियारा मीत।।

मनोहर श्याम मीत है, परंतु मिलता तो वह भी नहीं। जीवन के इस यथार्थ को मीरा स्थान–स्थान पर बताती चलती है। उसका विश्वास अटूट है, परंतु वह विश्वास फलित होता है, यह मीरा ने कभी नहीं कहा।

6.6 मन मोहन की छवि

यदि कृष्ण के मनमोहन रूप पर विचार करें तो पाएँगे कि मनमोहन की छवि अद्‌भुत है। सौन्दर्य और माधुर्य दोनों से परिपूर्ण है। इस छवि के बाहर और भीतर दोनों रूपों में खुशबू व्याप्त है। ऐसे श्याम सुंदर पर मीरा रीझती हैं। मनमोहन कृष्ण में रंगों की इंद्रधनुषी छटा है। उससे उनका व्यक्तित्व आकर्षक और सुंदर बनता है। सबसे पहले तो मोरपंख मुकुट पर विराजमान है। मोरपंख में रंगों की त्रिवेणी है। जिसमें हल्के और गहरे रंग का विचित्र संयोग है। माथे पर तिलक, कानों में कुंडल और गले में वैजयन्ती माला का आभूषण है। इससे तन की शोभा अनुपम हो जाती है। काले घुंघराले बाल, श्याम शरीर, राजीव लोचन चितवन में मंद मुस्कान। नासिका और ग्रीवा की रेखाएँ मनोहर हैं। उनके रोम रोम से आभा फूट रही है। ओठों पर वंशी और हृदय में राधा का प्रेम अद्‌भुत प्रभाव पैदा करता है, जो शब्दों से परे है। तन और मन से रंग, रूप, रस और ध्वनि फूट रही है। यह मीरा के मन को मतवाला बनाता है। इस मोहन के अंत में प्रेम का अमृत ही वंशी की तानों के माध्यम से फूट पड़ता है, जिसमें सुरों का वैभव है। मीरा के पदों में कृष्ण के सौन्दर्य का बहुआयामी रूप मूर्तिमान होता है। जिससे उनके व्यक्तिगत जीवन की सारी उदासी समाप्त हो जाती है। मीरा के भीतर का भाव कृष्ण मय होकर झूम उठता है। मीरा इस छैल छबीले से एक ही प्रार्थना करती है कि हे नंद के लाल, तुम मेरे नेत्रों में ही सदा के लिए बस जाओ। और वह कृष्ण के जिस सुन्दर रूप की कल्पना नैनों में बसने के लिए करती है वह भक्त वत्सल गोपाल हैं-

बसो मेरे नैनन में नंदलाल।।
मोहिनी मूरत सांवरी सूरत नैणां बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंति माल।
क्षुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुख दाई, भक्तबछल गोपाल।।

यहाँ भी मीरा प्रार्थना ही करती है और प्रार्थना करती रह जाती है। कृष्ण ने प्रार्थना सुन ली हो - यह तो इस पद में भी कहीं दिखाई नहीं देता।

मीरा के इस रास बिहारी की छवि भी विशिष्ट है। उसमें शांति और निश्चलता नहीं है। उसकी अदाएँ अनोखी हैं। मुद्राएँ टेढ़ी हैं। भंगिमाओं में गतिशीलता है। एक नट की तरह वह करतब करता है। इसमें नर्तक की सी चलन, चितवन और ग्रीवा की गति है। मीरा ऐसे श्याम सुंदर को अपना आराध्य मानती है। मीरा का गोविंद त्रिविध ताप का हरण ही नहीं करता है, अपितु वह अपनी लीला से सृष्टि की सुंदरता को जगमगाता है। वह वृंदावन के निकुंज में गाय चराता है। कदम्ब की छाँह में मुरली बजाता है। ब्रज गोपियों के साथ रास रचाता है। होली और फाग खेलता है। तरह तरह की लीलाएँ करता है। ऐसे मदन मोहन को मीरा अपने हृदय से लगाकर रखना चाहती है। मीरा इस रूप पर लुभा जाती है -

निपट बँकट छबि अटके।
मेरे नैन निपट ।। टेक ।।

देखत रूप मदन मोहन को पियत पियूरवन भटके।
बारिज भवाँ अलक टेढ़ी मनो, अति सुंगध रस अटके।
टेढ़ी कटि टेढ़ी करि मुरली, टेढ़ी पाग पर लटके।
मीरा प्रभु के रूप लुभानी, गिरधर नागर नटके।।

यदि वास्तविक संदर्भ में इसमें कुछ निचोड़ सामने आता है तो वह मीरा और उनके प्रभु के संबंध की प्रगाढ़ता है। मीरा की व्यग्रता, उत्कंठा और समर्पण में कल्पनाएँ सजीव होने का एहसास देती हैं। इतने तीव्र भावावेग का स्रोत कहीं न कहीं जीवन से ही निकलता है। इसके लिए किसी अतिमानवीय परिकल्पना की आवश्यकता नहीं है। इसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि मीरा के जीवन का अंधकार असाधारण रूप में घना था। वे मूर्त जीवन की निस्सारता से ऊबकर अमूर्त की ओर यात्रा करती हैं। वहीं उन्हें चैन, सुकून और विराम मिलता है। उसी में उनका सौन्दर्य बोध तृप्त होता है। और इसी रूप में मीरा का प्रभु अविनाशी हो जाता है।

6.7 मीरा के नटवर का उत्सवी रूप

भक्तिकाल की एक विशिष्टता यह भी है कि भक्तों ने नृत्य, चित्र, संगीत कलाओं में अपना योगदान दिया। उनके पद राग रागिनियों से बँधे हुए थे। पद के चित्र बनाए भी गए थे और पदों में चित्रात्मकता भरी पड़ी है। नृत्य की थिरकन और संगीत एक दूसरे से संबद्ध थे। कहने का अर्थ यह है कि भक्तों की कविता का पूरा माहौल उत्सव जैसा दृष्टिगत होता है। उत्सव में जैसी ताजगी, नूतनता और स्वच्छंदता होती है उसी तरह से पद की गति में भी कलात्मकता भरी हुई है। इसमें संवेदना का अनूठा अंदाज दीवानगी की हद तक पहुँचता है। भावावेग का प्रवाह ऐसा उमड़ता है कि सारी मान मर्यादा और खोखली नैतिकता का आवरण झड़ जाता है। मीरा साँवरे के रंग में डूब जाती है। पद घुँघरू बाँधते ही कुल जाति और लोकलाज टूटकर बिखर जाते हैं। मीरा का सूना महल कृष्ण भक्ति के आयोजन से गुलजार हो उठता है। पहली बार मीरा ने घूँघरू को नवीन अर्थ दिया। यह जीवन का उत्साह और जीवन जीने की इच्छा के रस से सराबोर करने का भव्य अनुष्ठान है -

मैं तो साँवरे के रंग राची।।
साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू, लोक लाज तजि नाची।
गई कुमति लई साधुकी संगति भगत रूप भई साँची।।
गाय गाय हरि के गुण निसिदिन काल ब्याल से बाँची।
उपा बिन सब जग खारो लागत और बात सब काँची।
मीरा के श्रीगिरिधर लाल सूँ भगति रसीली जाँची।।

मीरा के लिए यह प्रेम का उत्सव है। जिसमें भाव गहरा और रंग पक्का है। इसलिए इसमें काल को जीतने की क्षमता है। काल का साँप एक दिन सभी को खा जाएगा लेकिन गहन अनुभूति और हृदय का मर्म उससे बच निकलते हैं। शरीर के नष्ट हो जाने के बाद भी बाग बगीचे और पोखर में प्रेम की आवाज गूँजती रहती है। लोक मानस पर उसका प्रभाव बना रहता है। अमर तो वही होता है जिसे लोक मानस अपनाता है। मीरा का कृष्ण लोक में व्याप्त है। वह काल ब्याल के प्रभाव से अमिट है। मीरा का विश्वास कृष्ण, आशा भी कृष्ण और प्रतीक्षा भी कृष्ण ही हैं। इसलिए कि वह हिय में बसता है। उनके भीतर और बाहर दोनों जगह समा बँधा हुआ है। वह कृष्ण के इस स्वरूप का केवल अनुभव करती हैं। नेह स्नेह के लिए कोई आडंबर नहीं दिखातीं। दूरी रहने पर पाती भेजी जाती है। मीरा का विश्वास तो इतना अगाध है कि वह कहती है -

जिनका पिय परदेस बसत है, लिखलिख भेजै पाती।
मेरे पिया मेरे हीय बसत है, न कहुँ आती जाती।
चंदा जायगा, सूरज जायगा, जायगी धराज अकासी।
पवन पाणी दोनु ही जायेंगे, अटल रहै अनिवाशी।।

न मालूम कितनी स्त्रियों का पिया परदेश में बस जाता है और वहाँ से मात्र चिट्ठी भेजता रहता है। उस चिट्ठी से सूचना तो मिलती है परंतु साहचर्य का आनंद तो नहीं मिलता। उन स्त्रियों का भी अपना दर्द है। मीरा को उनसे सहानुभूति है। परंतु मीरा का कृष्ण अविनाशी है और वह हृदय में बसा हुआ है। भले ही एहसास के रूप में है। फिर सूरज चंदा धरती आकाश और पवन पार्थिव हैं। ये मिट जाएँगे। बस रह जाएगा तो उस अविनाशी कृष्ण से प्रेम ही।

6.8 मीरा की कृष्ण मिलन की परिकल्पना

कृष्ण मिलन का जिक्र मीरा के कई पदों में हुआ है। उन्होंने प्रेमी कृष्ण से मिलने का बड़ा ही तरल वर्णन किया है। कृष्ण लीला के पदों में सूरदास यदि प्रेम और मिलन के बारे में लिखते हैं तो वे गोपी और कृष्ण की चर्चा करते हैं। मीरा की स्थिति दूसरी है। वे स्वयं अपने और गोविंद के संबंधों को आत्मीयता से रचती हैं। इसे मीरा के शब्दों को ज्यों का त्यों अभिधा में स्वीकारना उचित नहीं लगता है। लेकिन भावना की जिस गहराई को मीरा ने छूने का प्रयास किया है वह तार्किकता से परे है। उसमें कुछ है तो प्रेम की पुलक और सिहरन। भावना की तन्मयता के क्षणों में उन्हें मोहन से मिलने की अनुभूति होती है। सारी फिजां परिवर्तित हो उठती है। आनंद की वर्षा से उनका हृदय पुलकित हो उठता है। मीरा को कृष्ण से मिलने का क्षण सावन की फुहार और होली के घमार जैसा लगता है। इससे अंदाजा लगा सकते हैं कि मीरा अपने बेहद अंत रंग और घनिष्ठ क्षणों में मिलन की संवेदना की रचना करती है। मिलना और मिलने के अनुभव की रचना करना बिल्कुल अलग अलग है। मीरा के जीवन में जितनी तरह की पीड़ा और यातना है उसमें केवल सृजनशील कल्पना ही उनका आधार है। उसी के सहारे उन्हें लंबी दूरी पार करनी है। इसीलिए कृष्ण के आने की प्रतीक्षा तथा आशा में मुरझाते मन को जैसे एका-एक ताकत मिल जाती है। यह प्रक्रिया जितनी तेजी से घटित होती है और यह मिलन इतना अल्पकालिक है कि इससे मीरा के मन में चल रहे तूफान को समझा जा सकता है। उदाहरण के तौर पर इस पद को देखते हैं -

झुँक आई बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन में उमँग्यो मेरो मनवा, झनक सुनी हरि आवन की।
उमड़ घुमड़ चहुँदिस से आयो, दामण दमक कर झर लावन की।
नन्हीं नन्हीं बूँदन मेहा बरसै सीतल पवन सोहावन की।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर आनंद मंगल गावन की।।

एक नायिका की तरह मीरा झनक सुनती है हरि के आने की। इसी से उनका मन उमंग और आनंद से भर उठता है। पिय को पाने का सुख है। ये सारे भाव चेतना के हैं। मीरा चित्त में पिय को पाती और खोती है। उनके वास्तविक जीवन में कड़ा पहरा है इसलिए मिलन का आकांक्षा चित्त में ही घटित होती है। उसका अनुभव सावन की फुहार की तरह है। यह पावस की फुहार, आँख में आँसू की झड़ी नहीं है। यह अंत रंग में उठती भावों की बदरी है। जिसमें सुहावनी नमी है। नन्हीं नन्हीं मंद शीतल पवन के साथ यह हृदय के ताप को मिटाती है। उसमें संगीतात्मक धुन का प्रभाव है जिसे केवल महसूस किया जा सकता है। मीरा उस उल्लास की साक्षी है।

यहाँ मिलन में संदर्भ लौकिक जीवन का है लेकिन पद के अंत में आते आते उसमें आध्यात्मिकता के संकेत भी रख दिए गए हैं। मीरा जहाँ जहाँ प्रेम को लेकर डूबती हैं, वहाँ उनका आत्मविश्वास और दृढ़ता गजब की है। ऐसी मानसिकता, आंतरिक सच्चाई के विभोर होने से पैदा होती है, जो विराट ब्रह्मांड से अपना संबंध जोड़ लेती है, जिसे खुली और पार्थिव आँख से देखा नहीं जा सकता है।

सहेलिया साजन घरि आया हो।।
बहोत दनो की जोवती, विरहणि पिय पाया हो।
रतन करूँ नेव छावर ले आरति साजें हो।
पिया का सनेसड ताहि बाहोत निवांजूँ हो।
पांच सखी इकठी भई, मिलि मंगल गावै हो।

यदि कृष्ण से मिलन संभव हो जाए तो, वह मिलन कैसा होगा? कितना मधुर और अकल्पनीय होगा। मीरा इस कल्पना की वास्तविकता का आनंद लेती है और यह आनंद अखंड है, अपरम्पार है। यह जीवन के लौकिक कष्टों को दूर करने वाला है।

6.9 मीरा में कृष्ण वियोग का दर्द

संयोग और वियोग शास्त्रीय शब्दावली में प्रेम के दो रूप हैं। संयोग में मिलन का सुख और वियोग में बिछुड़ने की पीड़ा से प्रेम की गहराई का अंदाजा लगाया जाता है। पाने और खोने की प्रक्रिया में भाव समृद्ध होता है इसमें परिपक्वता आती है। मीरा कृष्ण के सौन्दर्य पर रीझती है। उनका रास बिहारी से आकर्षण तीव्र है इसलिए वेदना भी उतनी ही तीखी है। इसमें भक्ति नहीं लोकजीवन की नाटकीयता है। वैसे भी प्रेम की सिद्धि करने के लिए कवियों ने ऊँची-ऊँची कल्पनाएँ की हैं। मीरा के विरह की विशिष्टता उसकी लौकिक सुगंध से सुवासित है। उनके पदों में ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रामीण नायिका अपने पति के परदेश जाने पर जैसे व्याकुल हुआ करती है उसी तरह मीरा भी अपने प्रियतम के अभाव में व्याकुलता का अनुभव करती है। उसमें बड़े ही स्वाभाविक बिम्ब चित्र और शब्दावली मिलती है।

मैं जाण्यी नाहीं प्रभु को मिलण कैसे होइरी।।
आये मेरे सजना फिरि गये अँगना, मैं अभागण रही सोइ री।
करूँगी चीर करूँ गल कंघा रहूँगी बैरागण होइरी।
चुटियाँ फोराँ माँग बखेरूँ, कजरा मैं डारुँ धोइरी।
निस बासर मोहि बिरह सतावै कल न परत मोइरी।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, मिलि बिछुरो मति कोइरी।

पिया से आँगन की शोभा बढ़ती है। वही सजनी के शृंगार का हेतु है। चूड़ी, कंगन और काजल सुहागिन की निशानी है। लेकिन पिया के नहीं होने पर अभागन कहलाती है। मीरा प्रियतम के वियोग में शृंगार के रंग और प्रतीक को धो डालना चाहती है। माँग धोकर और फटे कपड़े पहन कर वैरागण का वेश धारण करने का संकल्प लेती है। यह स्थिति पिय से दूरी के कारण पैदा होती है। इसमें विधवा और परित्यक्ता औरत के मर्म को मीरा ने उतार कर रख दिया है। मीरा ने तो कृष्ण के विरह में अपना यह रूप कर लिया है लेकिन उसके साथ लोक समाज का सच भी लिपटकर आ गया है। मीरा की समस्या यह नहीं कि उन्हें केवल वेदना ही सता रही है, उनके दरद को सहानुभूति देने वाला कोई नहीं। ईश्वर अज्ञात है। सास और ननद से घिरी होने के कारण व्यंग्य का प्रसाद मिलता है। उनकी व्यथा को संवेदनात्मक अनुभूति से समझा जा सकता है। मीरा के सूने हृदय और मनोजगत में प्रवेश करने पर उनकी यातना देख सकते हैं। वह अपने समाज और अपने

समय से इतनी आहत हैं कि प्रेम उनके लिए सूली की सेज है। लेकिन उन्होंने इस चुनौती को स्वीकार किया। कहीं भी वह टूटती और मिटती सी नहीं लगती हैं। शेष भक्त कवियों के विरह और मीरा की दीवानगी में यही अंतर है। वह उन्हें तोड़ता नहीं है अपितु और भी सबल बनाता है। दुख सहने की क्षमता से लैस करता है। यहाँ करुणा और विकलता के आँसू नहीं हैं। इसमें आत्मशक्ति और संकल्प की ऊर्जा है-

पीया बिनि रहयोइ न जाइ।
तन मन मेरो पिया पर बारुँ, बार बार बल जाइ।
निस दिन जोऊँ बाट पिया की, कबरे मिलोगे आइ।
मीरा के प्रभु आस तुमारी, लीज्यौ कंठ लगाइ।।

मीरा में कृष्ण के मिलने की यह आतुर पुकार सभी जगह दिखाई देती है। कृष्ण से मिलने के लिए वे अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए भी तत्पर हैं।

मीरा के प्रेम की पीड़ा का दूसरा हिस्सा सूफ़ी और फारसी प्रभाव में डूबा हुआ है। कवयित्री ने मरते दम तक प्रियतम को देखने की लालसा के जो चित्र खींचे है, उन पर सीधी-सीधी सूफ़ी छाया है। उनके पदों में स्थूल शरीर मिटाकर भी ह्रदय को बचाने की जोखिम भरी आशा मिलती है। जायसी ने जहाँ एक तरफ शरीर के ताप में मांस भूजने की बात कही है। वहाँ मीरा मांस गलने और छीजने का वर्णन करती हैं। लेकिन उसमें से दिल निकाल लेना चाहती हैं। उसे कौए को देकर उस जगह जाने को कहती हैं जहाँ पिय बसता है। पिय को देखकर कौआ जिगर को खाएगा तो विरहिनी को संतोष होगा। इन वर्णनों में अतिशयोक्ति भी दिखाई देती है -

माँस गले गल छीजिया रे, करक रहया गल आहि।
आँगलियाँ रो मूदड़ों, म्हारे श्रावण लागी बाँहि।
रहो रहो पापी पपीहा रे, पिव को नाम न लेइ।
ये कोई विरहणि साम्भले, पिव कारण जीव देइ।
खिण मंदिर, खिण आगणै रे, खिण खिण ठाढ़ी होंइ।
घायल ज्यूँ धुमें सदारी, म्हाँरी बिथा न बूझै कोइ।
काढ़ि कलेजो मैं धरुँ रे, कौवा तू ले जाइ।
ज्यों वेसों म्हाँरो पिव बसै, वे देखै तू खाइ।

मीरा कृष्ण को रहस्यात्मक विरह की परिधि में ले आई हैं। कृष्ण भक्ति में यह भी नया प्रयोग ही था क्योंकि भागवत से लेकर सूरदास तक, सभी में गोपी भाव की सहजता में विश्वास व्यक्त किया गया है। वहाँ गुप्त रहस्य, ज्ञान, जप, जोग पर व्यंग्य ही मिलता है। मीरा अपनी व्यक्तिगत संवेदना से भाव की भीतरी परत पर पहुँचकर दुख को रहस्य का आकार दे देती हैं। कवयित्री जितनी ही प्राणों का दीप जलाकर सूने आसमान में तारे गिनती रात के सन्नाटे को काटती उन्माद से भरी मालूम पड़ती हैं, उनके आराध्य उतने ही निष्ठुर और बेदर्द से लगते हैं। वह महल, अटारी, आँगन, सेज, गाँव, गली, वसंत और सावन को सूना करने के बाद भी खबर नहीं लेते। लेकिन मीरा अपने निकट उनसे ज्यादा किसी को मानती ही नहीं क्योंकि उनका प्रेम, आशा और विश्वास से सींचा हुआ पौधा है।

अँसुवन जल सींचि, सींचि प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेलि फैल गई, आणंद फल होई।

प्रेम की यह बेल आँसुओं के जल से सींची हुई है। यह बेल अब फैल गई है। अब इसके मिटने की, नष्ट होने की कोई संभावना नहीं है। यह अटूट विश्वास विरहजन्य पीड़ा के बावजूद है।

6.10 भक्त वत्सल श्री कृष्ण

मीरा कृष्ण के साथ कई रूपों में संबंध जोड़ती हैं। वह प्रियतम के रूप में उलाहना देने का अधिकार रखती है तो भक्तिभाव में डूबकर उनके चरणों के प्रति समर्पित हो जाती हैं।

एक भक्त प्रेम और मुक्ति दोनों की कामना रखता है। कवयित्री के मन में ऐसी ही भावना है। वे पदों में उन सभी भक्तों का स्मरण करती हैं जिनका उद्धार भगवान ने किया जैसे प्रहलाद, ध्रुव, अहिल्या आदि। इनके कष्ट से पीड़ित होकर भगवान ने उन्हें मुक्त किया। मीरा को अपने गिरधर से ऐसी ही आशा है। वे मानती हैं कि ईश्वर उनके तापों को हर लेगा। इसमें सोचने की बात यह नहीं कि गिरधर ने उन्हें कितना अपनाया अथवा ठुकराया, सोचने की बात यह है कि संसार से उन्हें कितनी निराशा थी। अतः हर समय, उन्हें मुरारी की याद आती है। वह नंदनंदन उन्हें भी कठिनाइयों से मुक्त करेगा इस विश्वास पर जीवन को जी लेना कितना कठिन रहा होगा, इसका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। एक तरफ कुल कुटुंब की प्रतारणा और दूसरी तरफ मीरा का कृष्ण प्रेम है। इन दो के बीच में मीरा लगातार भक्त वत्सल भगवान की ओर करुण नेत्रों से निहारती हैं। सांसारिकता के धोखे और षड्यंत्र को देखने के बाद मीरा की दुनिया ही बदल गई। उसके बाद उस परम से एकाकार होने का स्वप्न देखने के अलावा उनके पास और दूसरा मार्ग नहीं था। कुल की मर्यादा की, आन की रक्षा के उनके उदाहरण से राजस्थान के इतिहास में भरे पड़े हैं। वहाँ मीरा उस मर्यादा की धज्जियाँ उड़ाने का साहस करती है। यह सत्ता के संपूर्ण प्रतिष्ठान के प्रति विरोध है। कवयित्री में यह विचार अपने अनुभव से देखे और अनुभूत किए गए समाज से बना था। वह किसी से उधार लिया हुआ नहीं था। इसलिए उसमें सहजता, स्वाभाविकता और सच्चाई है। मीरा को प्रेम भाव के बिना महल सूना लगता है और आभूषण भार स्वरूप लगते हैं। सामंती जीवन में महल और हरम को सुंदर बनाए रखने के लिए युद्ध होते थे, लेकिन आंतरिक मनोभाव की पवित्रता और शुचिता के बिना वह सब निरर्थक हैं। इस भावना को संवेदनशील मनोवृत्ति के लोग ही पहचान सकते थे। मीरा ने इसे इस तरह से समझा है-

आवो सहेल्यि रली कटाँ हे पर घर गवण निवारि।
झूठा माणिक मोतिया रो झूठी जगमग जोति।
झूठा सब आभूषण री, साँचा पियाजी री पीति।
झूठा पटि पटंबरारे झूठा दिखणी चीर।
साँची पिया जी री गूदड़ी जामे निरमल रहे सरीर।

मीरा के अनुसार बाहरी आभूषण, धन, दौलत सब झूठा है, सच्ची तो पिया की गूदड़ी है, जिसमें शरीर निर्मल रहता है।

भक्त वत्सल भगवान से मीरा क्या चाहती हैं, इसकी तह में जाने की आवश्यकता है। क्या भगवान से प्रेम और भक्ति ही वे माँगती हैं अथवा उन पर संसार को बचाने की जिम्मेदारी भी सौंपती हैं। निःसन्देह दुनियादारी से हटाना भी उनके आराध्य का ही काम है। संसार उनके लिए काँटों का बगीचा है। एक ही काँटे की चुभन सहना मुश्किल होता है। मीरा के लिए तो दर्द की महफिल ही सजी थी। ऐसे में कोई अपना नहीं पाकर गोविंद का स्मरण करती है। मीरा के गिरधारी, लोक लाज को अनसुनी करने का साहस देते हैं। वह उसी के बल से निर्भय होकर संसार में विचरती हैं। उनका भगवान जीवन के विष को अमृत में बदल देता है। सूली की सेज को फूल में और विघ्न को रास्ते से हटा देता है। ये सारे प्रतीक हैं, जिनका कवयित्री बार बार जिक्र करती है। आखिर विष और काँटा उन्हें अपने जीवन के रेगिस्तान में अपने रिश्तेदारों से ही मिला था।

हेली म्हांसूँ हरि बिनि रहयो न जाय।।
सास लडै मेरी ननद खिजावै राणा रहया रिसाय।
पहरो भी राख्यो चौकी बिठारयो ताला दियो जड़ाय।
पूर्व जनम की प्रीत पुराणी सो क्यूँ छोड़ी जाय।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर और न आवे म्हांरी दाय।।

मीरा का अटल विश्वास है कि जिसने द्रौपदी की लज्जा की रक्षा के लिए चीर बढ़ाया, प्रहलाद की रक्षा के लिए नरसिंह रूप धारण किया, ग्राह से गज की जान बचाई है वह मीरा की बाँह थामने जरूर आएगा। वे उसकी शरण में ही अपने को सुरक्षित पाती हैं। संसार तो उनके लिए जोखिम और खतरों से भरा है। उनका प्रतिपाल ईश्वर ही कर सकते हैं। वे सबकी सुनते हैं तो मीरा के आर्त्त स्वर को भी सुनेंगे क्योंकि वे करुणा निधान हैं।

6.11 मीरा के नट नागर की लीला

मीरा के पदों में ज्यादातर प्रसंग उनके व्यक्तिगत जीवन से जुड़े हुए हैं। महल, हवेली और अंतःकक्ष के बीच, उनकी आत्माभिव्यक्ति की झलक मिलती है। अपने टूटे हुए संबंध की पीड़ा और प्रभु के शरण में शरणागति के लिए भजन करती नजर आती हैं। कृष्ण का उल्लेख उन्होंने लगभग हर जगह किया है, लेकिन अपनी इच्छा के अनुकूल भावनाओं को व्यक्त करने के लिए। मीरा की दुनिया अपने अवसाद और विषाद के इर्द-गिर्द ही घूमती रहती है। इसमें सूर की तरह की लीला का व्याख्यान नहीं है। मीरा सर्वथा इससे वंचित भी नहीं है। बहुत थोड़े पदों में उन्होंने कृष्ण जीवन की लीलाओं का भी मनोरम वर्णन किया है। भगवान के कुछ विशेष प्रसंग पर ही वे केंद्रित रहती हैं। ब्रजभूमि की महिमा, बाल लीला, वंशीवादन, चीर हरण, मिलन पनघट फाग लीला, दधि बेचन, मथुरा गमन, उद्धव प्रसंग और सुदामा चरित्र आदि को उन्होंने पद में विवेचित किया है। वृंदावन धाम की महिमा का जिक्र मीरा के स्वप्न एवं कल्पना लगते हैं। यहाँ न लोक लाज का घूँघट है, न सास ननद का झगड़ा और न राणाजी का कठोर अनुशासन। 'वृंदावन' अपने नाम के अनुरूप ही स्वच्छंद है। यमुना का जल, दूध, दही का भोजन और कुंज में मुरली की ध्वनि मीरा को यथार्थ जीवन की कटुता और कुटिलता से अलग स्वच्छंदता देती है। कवयित्री ने जीवन में काफी क्लेश को सहन किया था, वृंदावन की तलाश में उनका जीवन गुजर गया। जब वह मिला तो शांति और स्थिरता में मिली। वह सखियों से इसका वर्णन करती हैं –

आली मोहि लागत वृन्दावन नीको।।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोविंद जी को।
निरमल नीर बहत यमुना को, भोजन दूध दही को।
रतन सिंहासण आप बिराजे, मुकुट धरयो तुलसी को।
कुंजन कुंजन फिरत राधिके सबद सुणत मुरली को।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर भजन बिना नर फीको।

हालाँकि मीरा एक बार वृन्दावन गई थी, परंतु वह वहाँ ज्यादा दिनों तक रह नहीं पाईं। वहाँ से वह गुजरात चली गईं। अतः इस पर विद्वानों ने अधिक मंथन नहीं किया है।

जमुना की शीतल पुलिन पर मीरा के मोहन बाल लीला करते हैं। बाल लीला में संपूर्ण अंश को न लेकर मीरा ने कुछ चुने हुए प्रसंगों को रचा है। इसमें मीरा के लोक जीवन की धुँधली झाँकी मिलती है। गाँव में भोर की बेला के कार्य व्यापार का सुंदर चित्रण है। सबेरे कैसे बच्चे को जगाया जाता है। ग्वालिन के दधि मथने की आवाज़ हो रही है, उसके कान के कँगनों में कंपन होती है। बच्चों की टोलियाँ द्वार पर आकर शोर मचाती हैं। हाथ में

माखन रोटी लेकर कृष्ण गाय चराने को निकल जाते हैं। इस चित्र के आगे वंशीवादन की लीला है। मुरली मन को चंचल बनाती है। चेतना को वश में करती है। इसका प्रभाव रहस्यात्मक है। मीरा कृष्ण लीला की बात करते करते स्वयं भी उसमें सम्मिलित हो जाती हैं। अपनी बात कहने लगती हैं। चीर हरण लीला के संदर्भ में मीरा कहती हैं -

मैं जल जमुना भरन गई, आ गयो कृश्न मुरारी हे माय।
ले गयो सारी अनारी म्हारी जल में ऊभी उधारी हे माय।
सखी साइनि मारी हँसत है हँसि हँसि दे मोहि तारी हे माय।
सास बुरी और नणद हठीली लरि लरि दे माहि गारी हे माय।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल की बारी हे माय।

मीरा अपने 'मैं' को कहीं भी नहीं छोड़ती हैं। उनका मैं इतना अधिक बार दुहराया गया है कि कृष्ण की विशिष्टता भी उसमें कैद होकर रह गई है। किसी बड़े चरित्र नायक को जितनी विविधता, व्यापकता और गहराई से रचा जाना चाहिए था वैसा नहीं हो पाया है। मीरा ने कृष्ण को आत्मसात किया लेकिन अपनी शर्त पर।

मिलन लीला में राधाकृष्ण जुगल जोड़ी के सौन्दर्य प्रसंग हैं। पनघट पर कन्हैया का आना कृष्ण भक्ति साहित्य का रस भरा प्रसंग है। पनघट छेड़छाड़ का पर्याय बन गया। मीरा के एक पद में कृष्ण के व्यवहार का वर्णन है। वह कितना बड़ा चित्त चोर है। किशोर कृष्ण की साँवली सूरत जादू करती है। इसमें चेहरे की भंगिमाओं का मीरा ने सूक्ष्मता से अवलोकन किया है। दृष्टि प्रेम की कटारी है। वह तन और मन दोनों को मतवाला बनाती है। वह जिधर पड़ती है उधर ही हृदय को भेद जाती है। श्याम की नजरों में प्रेम भरा है। जिसे वह देखता है वही मतवाली हो जाती है। बावलेपन में चित्त बौराया और बेसुध सा जान पड़ता है। पनघट का कुंज बिहारी, होली में छैल छबीला बन जाता है। फाग में धमाल मचाता है तथा राग, रंग और स्वर से वातारण को रंगीला बना देता है। स्वयं रसिक बिहारी बनकर ब्रज को सराबोर कर देता है।

छैल छबीले नवल कान्ह संग स्यामा प्राण पियारी।
गावत चार धमार राग तहँ दै दै कल कर तारी।

मथुरा गमन के बाद गोपियों की मनोदशा का वर्णन कवियों ने मन लगाकर किया है। तरह तरह के उपमेय और उपमान का प्रयोग किया गया है। मीरा की पंक्तियों में संगीतात्मक अनुभूति भरी हुई है। गोपियों से ज्यादा उनके अपने उद्‌गार निकले हैं। प्रेम के बाद पिय को खोने की जैसी पीड़ा हो सकती है उसका यथा तथ्य चित्रण मिलता है। मीरा और गोपी में फर्क नहीं रह गया है। अंतराल मिट गया है। इसलिए मीरा गाती है।

होजी हरि कित गए नेह लगाय।।
नेह लगाय मेरो हर लीयो रस भरी टेर सुनाय।
मेरे मन में ऐसी आवै मरूँ जहर बिस साय।
छाड़ि गये विसवास घात करि, नेह केरी नाव चढाय।
मीरा के प्रभु कबरे मिलोगे, टहे मधुपरी छाय।

6.12 मीरा के वस्तु जगत और चेतन जगत में कृष्ण

वस्तु जगत यानी सांसारिक यथार्थ। मीरा को ऐसे समाज से सामना करना पड़ा जिसका बंधन बड़ा ही कठोर था। मीरा के वस्तु जगत में लोक-लाज सास, ननद, ताला, किवाड़ी, महल और अटारी है। चेतना में कृष्ण वृंदावन धाम की छवि है। राणा के सारे जुल्म और अत्याचार को सहकर भी अपने अंतर्मन में बैठी मीरा कृष्ण से अलग नहीं होती है। वह मनमोहन कोई और नहीं कवयित्री की रचनात्मक संवेदना की कोमल प्रस्तुति है।

उसका रास भी मीरा के अंतस्तल में रचा बसा है-जहाँ प्रेम का हौज है। मुक्तात्मा हंस उसमें केलि कर रहा है। इस लोक में उच्च मानवीय भाव और उदार गुण की वर्षा होती है। जहाँ लज्जा के कपड़े को ओढ़ना, धीरज को घाघरा, क्षमा को कंगन, सुमति को अँगूठी, दारियादिली को माला, सच को गहना, गुरु ज्ञान को उबटन, ध्यान को स्नान, ज्ञान को कान का गहना, युक्ति को संसार मुक्ति का उपाय, हरि के नाम को नाक गहना, चित्त की उज्ज्वलता की चूड़ामणि, आत्म तल्लीनता को घूँघरू बनाया जाता है। मीरा जिस कृष्ण को अपनाना चाहती है, वह केवल भावना का नैसर्गिक प्रवाह नहीं है। चित्तवृत्ति की मलिनता को दूर करके मीरा, उसके प्रति पूरी पवित्रता से समर्पित होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो वस्तु जगत के सारे धागे को तोड़कर बिखरा देती है। निर्मल मन से उस द्वार पर पहुँचती है जहाँ राम, कृष्ण और सतगुरु का अंतर मिट जाता है। नाम केवल संबोधन का आधार रह जाता है। कृष्ण, राम और सतगुरु, की ध्वनि की तरंग में केवल मीरा के घूँघरू की झनक की तैरती अनुगूँज, निरंतरता में प्रवाहित होती सी जान पड़ती है।

ऐसे बार को क्या करुँ, जो जनमैं और मर जाय।
बार बरियै एक साँवरो री, (मरो) चुड़लो अमर होय जाय।
मैं जान्यो हरि मैं ठग्योरी, हरि ठग ले गयो मोय।
लख चौरासी मौरचा री, छिन में गेरया छै बिगोय।
सुरत चली जहाँ चली री, कृष्ण नाम झणकार।
अबिनासी की पोल पर पंजी, मीरा करै छै पुकार।।

6.13 सारांश

मीरा के कृष्ण लौकिक नहीं हैं, मानवीय नहीं हैं। वे अलौकिक है, परब्रह्म परमेश्वर है, वे रहस्यमय हैं। मीरा इसे जानती है और मानती है। मीरा का दुःख, पीड़ा और संघर्ष लौकिक है, मानवीय है। आज हमें वह आकर्षित करता है, परन्तु मीरा अपने आपको कृष्ण की दासी कहती है। स्वयं को कृष्ण के चरणों में बेच देती है। कृष्ण को खरीद लेती है। वह भी बिना मोल भाव के खरीद लेती है। मीरा को कृष्ण से इस लौकिक जीवन को सहन करने की शक्ति मिलती है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने ठीक ही लिखा है, "मीरा को अपनी असहायता का तीव्र बोध है। यह बोध जितना तीव्र है उतना ही हरि के प्रति समर्पण की भावना है। इस असहायता के बोध में कहीं न कहीं अबलात्व का बोध और यह एहसास कि स्त्री सचमुच अबला होती है, मिला है। पति की मृत्यु, सास-ननद की ताड़ना, पिता की मृत्यु, देवर राणा का पीड़न और ऊपर से दुर्जनों की लोकनिंदा इन सबने मीरा को बहुत असहाय मनःस्थिति में डाला होगा।" निश्चय ही मीरा को यह सब सहने और त्यागने की शक्ति कृष्ण की भक्ति से आई है। और यहीं पर उनकी कविता और उनके जीवन में कृष्ण एक प्रेरणा शक्ति के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे "अलौकिक होते हुए भी लौकिक भूमिका निभाते हैं।"

मीरा और कृष्ण प्रेम के लिए पर्याय बन गए। लोगों की जुबां पर उनकी कहानी चढ़ गई। लोक मानस में अपना प्रभाव छोड़ना इतना आसान नहीं। यह मीरा के दीर्घ और कठिन तपस्या का परिणाम है। जमाने की नजर से लापरवाह होकर मीरा कृष्ण की मूर्ति के सामने नृत्य करती रही। न घूँघरू की ध्वनि मंद पड़ी और न मीरा की ऊर्जा कम हुई। मीरा का महत्व इससे नहीं आँका जाएगा कि उन्होंने अपने लिए कितना जहर पिया। उनकी सार्थकता इसमें है कि उन्होंने नारियों को कृष्ण मंदिर का रास्ता दिखाया। घर और ससुराल के अतिरिक्त तीसरे स्थान की खोज की। जहाँ स्त्री सुरक्षित और स्वतंत्र होकर जीने का अधिकार पा सके। उस मध्ययुग में इस पर सोचना और संघर्ष करना मीरा की बड़ी उपलब्धि है।

6.14 अभ्यास प्रश्न

1. कृष्ण की अवधारणा के विकास पर प्रकाश डालिए।
2. मीरा के कृष्ण का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
3. मीरा के आराध्य कृष्ण पर निर्गुण संतों और सूफियों के प्रभाव का विवेचन कीजिए।
4. "मीरा के कृष्ण अलौकिक हैं, परन्तु मीरा के दुःख दर्द लौकिक हैं।" इस कथन को ध्यान में रखते हुए मीरा और कृष्ण के संबंधों पर प्रकाश डालिए।

इकाई 7 मीरा की भक्ति का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 भक्ति सम्बन्धी कुछ प्रारंभिक जानकारियाँ

7.3 भक्ति का स्वरूप और दर्शन

7.4 मीरा की स्वाभाविक भक्ति

7.5 मीरा की मधुरा भक्ति

7.6 मीरा की भक्ति का रहस्यात्मक स्वरूप

7.7 मीरा की भक्ति का शास्त्रीय स्वरूप

- 7.7.1 शरणागति एवं गुण स्मरण
- 7.7.2 नाम सुमिरन
- 7.7.3 दास्य भक्ति
- 7.7.4 गुरु महिमा
- 7.7.5 आत्म समर्पण

7.8 मीरा की भक्ति में वृंदावन का महत्व

7.9 कृष्ण लीला की रसिक अनुभूति

7.10 मीरा के आराध्य

7.11 सारांश

7.12 अभ्यास प्रश्न

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई मीरा की भक्ति भावना से संबंधित है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- भक्ति के स्वरूप को जान सकेंगे;
- भक्ति के तात्विक विवेचन को स्पष्ट कर सकेंगे;
- मीरा की भक्ति के स्वरूप को पहचान सकेंगे; और
- मीरा की भक्ति पद्धति की अन्य भक्त कवियों से तुलना कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

सामान्य धारणा के अनुसार भक्ति, भाव अथवा अनुभूति का विषय है। वह, तार्किक विवाद से परे आस्था का मूर्त रूप है। लेकिन भक्ति के संबंध में जटिलता तब पैदा होती है जब इसकी पद्धति और स्वरूप को निर्धारित किया जाता है। प्राचीन काल से ही भक्तों का यह

मत प्रचलित रहा कि भक्ति, सिद्धांत के रूप-ज्ञान की शाखा है और व्यवहार में संवेदना से संबंधित है। उपनिषद काल में मन के साथ भावना और बोध दोनों जुड़ गए। गीता में भक्ति का कर्म और ज्ञान समन्वित रूप का प्रसार है परंतु भागवत में भक्ति को सबसे ऊपर प्रतिष्ठित किया गया है। भक्ति और ज्ञान के जुड़ाव को समझना बेहद जरूरी है। वास्तव में ज्ञान से ही उपास्य के स्वरूप को जानकर उपासक, भक्ति और प्रेम की ओर बढ़ता है। इसलिए भागवत में स्वरूप बोध के लिए तत्व चिंतन की स्वाभाविक पद्धति की अनुमति है। उपनिषद में ईश्वर, ज्ञान की रहस्यमयी भाषा के विविध प्रतीक के रूप में आया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति के विकास में लिखा है "ज्ञानी, ब्रह्म के जिस स्वरूप का अपने चिंतन के बल से उद्घाटन करके तटस्थ हो जाता है उसी स्वरूप को भावुक भक्त लेता है और ध्यान या भावमग्नता के समय उसमें अपनी सारी सत्ता को हृदय, प्राण, बुद्धि कल्पना, संकल्प इत्यादि सारी वृत्तियों को समाहित और घनीभूत करके बड़े वेग के साथ लीन कर देता है। इस प्रकार अपनी व्यक्तिगत सत्ता की भावना का पूर्ण विसर्जन हो जाने पर केवल उसी ध्येय स्वरूप की अत्यंत तीव्र अनुभूति मात्र शेष रह जाती है।" वैष्णव भक्ति के प्रधान ग्रंथ गीता और भागवत पुराण ने इस मुद्दे पर अपनी राय स्पष्ट रूप से प्रसारित की है। भागवत के अनुसार परमेश्वर के तीन रूप हैं ब्रह्म, परमात्मा और भगवान। ब्रह्म ज्ञान का विषय है, परमात्मा योग का और भक्ति भगवान का। भागवत में जिस भक्ति पर चिंतन किया गया है उसमें बुद्धि और भावना के साथ मिलकर ईश्वर की अनुरक्ति और प्रतीति होती है। भक्ति, दर्शन और जीवन को साथ साथ लेकर चली। आचार्यों ने उसके सैद्धांतिक पक्ष और लीला के महत्व को समझाने का प्रयत्न किया है। भक्तों ने ईश्वर से बार-बार अनुग्रह की प्रार्थना की है। लीला भाव में भक्ति के कण चुनने का प्रयास किया है।

भक्ति का कार्य क्या है। इसके संबंध में भी जान लेना आवश्यक होगा। वह भावना और कल्पना को प्रचुर करती है। इससे शक्ति, सौन्दर्य और महात्म्य का प्रसार होता है। तत्व चिंतन द्वारा ब्रह्म के दोनों रूपों के प्रति उपासना की भूमि तैयार होती है। इसी उपासना भाव से प्रेम प्रधान भक्ति का विकास हुआ। भागवत में श्रीकृष्ण के जीवन के मधुर पक्ष की रचना की गई है। भक्ति मार्ग में कृष्णोपासना बालकृष्ण, किशोर माधव और गोपियों के प्रियतम पर केन्द्रित है। कृष्ण भक्तों की प्रेम लक्षणा भक्ति में गोपी भाव से उपासना को महत्व मिला है। श्री कृष्ण की मनोहर छवि ही उसका एक मात्र कारण है और उस स्वरूप के अधिक से अधिक नैकट्य की अभिलाषा ही उसका लक्षण है। गोपी के प्रियतम के रूप में भगवान की भावना को माधुर्य भाव और उसके प्रति प्रेम को मधुर रस कहा गया।

7.2 भक्ति संबंधी कुछ प्रारंभिक जानकारियाँ

मीरा की भक्ति के स्वरूप को ठीक से समझने के लिए आपको कुछ प्रारंभिक बातों की जानकारी होनी चाहिए। वैसे तो इनमें से अधिकतर बिंदुओं का विस्तार से एम.एच.-6 के खंड-2 'भक्ति कालीन साहित्य' में इनका उल्लेख हो चुका है। आपने ध्यान से इस खंड को पढ़ लिया होगा। तब भी, मीरा को समझने के लिए उन बातों को पुनः जान लेना एवं स्पष्ट रूप में समझ लेना उपयोगी होगा।

मध्यकाल के अधिकांश बुद्धिजीवी, लेखक, विचारक और कवि इस सृष्टि के निर्माता के रूप में परमपिता परमेश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। इस परमात्मा को पाने, आराधना करने, प्रसन्न करने के अनेक मार्ग है। भक्ति उनमें से एक है। विद्वानों का मत है कि भक्ति शब्द की उत्पत्ति भज् धातु से हुई है। जिसका अर्थ होता है भजना। भक्ति मार्ग का प्रमुख सम्प्रदाय भागवत धर्म माना जाता है। भक्ति का विद्वानों ने शास्त्रीय विवेचन भी किया है।

आचार्यों का मत है कि भक्ति दो प्रकार ही होती है - रागानुगा और वैधी। मन की सहज वृत्ति से जो भाव जाग्रत होता है वह राग कहलाता है। बुद्धि से सोच-समझ कर कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की धारणा में विधि निहित है। इस तरह शास्त्र सम्मत भक्ति वैधी कहलाती है और मन की सहज प्रेरणा से अनुप्राणित भक्ति रागानुगा कहलाती है। वैधी भक्ति के दो मूलभूत तत्व माने जाते हैं - (i) भगवान ही एकमात्र जीवों का स्मर्तव्य है और जो उनके सुमिरन में सहायक हैं। वे कर्म ही भक्त के कर्त्तव्य हैं। (ii) भगवान को भूल जाना ही अमंगल है और अमंगल के सहायक सभी कर्म त्याज्य है। इसके पाँच अंग माने जाते हैं - भगवान के विग्रह (मूर्ति) की सेवा, कथा-सत्संग, साधु-संग, नाम कीर्तन, और ब्रजवास। वैधी मार्ग का भक्त स्वभावतः ही इनका पालन करता है।

रागानुगा भक्ति भी दो प्रकार की मानी जाती है - कामरूपा और संबंध रूपा। गोपियों की रागानुगा भक्ति कामरूपा थी। इसमें कृष्ण मिलन के सुख के सिवा अन्य किसी सुख की कामना नहीं रहती। संबंध रूप भक्ति में चार मुख्य संबंध होते हैं - प्रभु - दास संबंध, सखा संबंध, पिता-पुत्र संबंध, और दाम्पत्य संबंध।

भक्ति साहित्य में भक्ति के विवेचन के संदर्भ में नवधा भक्ति की चर्चा भी होती है। नवधा भक्ति में भक्त के नौ कर्त्तव्य निर्धारित किए गए हैं - सत्संग, भगवतकथा लाप, गीता आदि वाक्यों की व्याख्या, भगवत्वाक्यों की व्याख्या गुरु की निष्कपट सेवा, पवित्र स्वभाव, मंत्रोपासना, भक्तों के प्रति श्रद्धा का भाव एवं वैराग्य तथा तत्त्व विचार। रागानुगा भक्ति के अन्तर्गत वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित पुष्टि मार्ग को भी समझने की जरूरत है। पुष्टि मार्ग के आचार्यों का मत है कि पुष्टि मार्ग में दीक्षित होते समय अपने आपको सर्वात्म भाव से कृष्ण को समर्पित किया जाता है। इसके बाद भक्त किसी भी वस्तु को भगवान को समर्पित किए बिना ग्रहण नहीं कर सकता। इस समर्पण के तीन स्तर है - (i) तनुजा अर्थात् अपने तथा अपने पुत्र, स्त्री आदि के शरीर को भगवान की सेवा में लगाना (ii) वित्तजा अर्थात् धन, यश आदि को भगवान के निमित्त अर्पित करना और (iii) मानसी अर्थात् मन का विरोध करके निरन्तर भगवान में लीन रखना। यह सेवा सबसे महत्वपूर्ण है।

भक्ति चिंतन के अनुसार जगत, ईश्वर की लीला का परिणाम है। लीला दो प्रकार की होती है -नित्य लीला और नर लीला या अवतार लीला। इसे गुप्त लीला और प्रकट लीला भी कहते हैं। लीला का संबंध भगवान से होता है। भगवान ही लीला करते हैं। नित्य लीला दो प्रकार की होती है - मंत्रोपासनामयी और स्वारसिकी। इस तरह लीला और अवतार की धारणा में पर्याप्त सैद्धान्तिक मान्यताएँ हैं। जिन्हें सार रूप में आपको जानना चाहिए। मीरा की भक्ति को जानने के लिए इन मान्यताओं को भी सार रूप में जानना जरूरी है। ये पद मीरा के साहित्य को समझने के लिए बार-बार आपके सामने आएँगे। इसके बाद ही आप मीरा की भक्ति के महत्व को समझ पाएँगे, जो इन सैद्धान्तिक मान्यताओं को अलग करके कृष्ण से प्रेम करती है।

7.3 भक्ति का स्वरूप और दर्शन

तत्व चिंतन में भक्ति को मुख्य रूप से दो विभागों में रखकर आचार्यों ने इसके स्वरूप को स्पष्ट किया है। सगुण और निर्गुण के रूप में इसकी व्याख्या की गई है। सगुण और निर्गुण का भेद आरंभ से ही वैदिक और औपनिषदिक विचार का हिस्सा रहा है। लेकिन दोनों का द्वंद्व भेद और प्रतिस्पर्द्धा मध्यकाल की विशेष सामाजिक परिस्थिति की उपज थी। शंकराचार्य के अद्वैत का खंडन रामानुज, मध्व, निंबार्क और वल्लभ ने पूरी तैयारी के साथ किया है। एक ओर इन आचार्यों ने नए नए मतवाद सिद्धांत की राह बताकर बौद्धिक बहस

से उसे प्रमाणित किया। दूसरी ओर व्यवहार के धरातल पर भक्ति के संदेश का प्रसार किया। उसके विस्तार के लिए गढ़ और मठ बनाए। भक्ति की पद्धति को निर्धारित किया। निंबार्क का सनक संप्रदाय गोपी वल्लभ कृष्ण की महत्ता को मानता है। इस मत में राधा को कृष्ण की पत्नी माना गया है। वल्लभ, राधावल्लभ और हरिदासी संप्रदाय पर इसका विशेष प्रभाव रहा है। विष्णु स्वामी ने शुद्धाद्वैत सिद्धांत की स्थापना की। इन्हीं के प्रभाव से वल्लभाचार्य ने उत्तर भारत में कृष्ण भक्ति का प्रचार किया। बंगाल के वैष्णव सहजिया संप्रदाय में नर नारी के प्रेम को राधा कृष्ण के प्रेम से संबद्ध किया गया। बौद्धों के अनुकरण पर नायिका भजन को मान्यता मिली। चण्डी दास इसके प्रसिद्ध भक्त कवि हुए। चैतन्य मत के प्रवर्तक महाप्रभु चैतन्य देव ने समस्त बंगाल और उत्तरी भारत को भक्ति रस से भर दिया। इन्होंने भक्त की भूमिका में प्रेमभाव से राधा कृष्ण को रस सिक्त किया। चैतन्य ने संप्रदाय के सिद्धांत का निर्माण नहीं किया अपितु उन्होंने केवल भावमग्न भक्ति की रूपरेखा लोगों के सामने प्रस्तुत की। चैतन्यमत की भक्ति के आकार को रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी और जीव गोस्वामी ने शास्त्रीय आधार दिया। भक्ति रसामृतसिंधु, उज्ज्वल नीलमणि तथा लघु भागवतमृत आदि इनके ग्रंथ हैं जिनमें बौद्धिक विवेचन किया गया है। चैतन्य की भक्ति में रागानुगा भक्ति की महत्ता स्थापित की गई है। भक्ति के सख्य, वात्सल्य, दास्य आदि अन्य प्रकार के भावों की अपेक्षा मधुर भाव को प्रधान माना गया है। माधुर्य भाव में प्रेम का भाव ही प्रबल है। इसमें प्रेम की तीन कोटियाँ बताई गई हैं। साधारण रति जैसी कुब्जा की है, सामंजस रति जैसी रुक्मिणी की है और समर्था रति जिसका आदर्श ब्रज, गोपी और राधा हैं। चैतन्य, राधा रूप होकर कृष्ण प्रेम में महाभाव का अनुभव करते थे।

शुद्धाद्वैत दर्शन और प्रेमलक्षणा भक्ति का आधार लेकर पुष्टमार्ग का खाका तैयार हुआ। पुष्टिमार्गीय भक्ति का स्वभाव प्रेम लक्षणामूलक है। इस मार्ग की मान्यता है कि प्रेम की सिद्धि विरह से होती है इसलिए भक्ति के श्रवण कीर्तन स्मरण आदि सभी साधन विरहमूलक हैं। प्रेमसिद्ध होने पर भक्त, लोक और वेद दोनों से विरक्त हो जाता है। इसमें भक्ति की तीन अवस्थाएँ मानी गई हैं - रूपसक्ति, लीला सक्ति और भावासक्ति। भगवान की सरस लीला और उसके गोलोक धाम की प्राप्ति पुष्टि भक्ति का सर्वोच्च लक्ष्य है। वल्लभ संप्रदाय में गोकुल का महत्व बैकुंठ से भी अधिक है। यही कारण है कि ब्रज के समस्त प्राणी, पशु, पक्षी, कुंज, निकुंज और कण कण से उसमें अनुराग भरा है। पुष्टिमार्ग में कृष्ण का दर्शन, ब्रज की भौगोलिक बनावट के साथ वहाँ के जड़ चेतन आदि प्रत्येक पदार्थ से जुड़ा है। पुष्टिमार्ग ने अष्टछाप कवियों के लिए दार्शनिक पीठिका और भावभूमि की पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। अष्टछापी कवियों का मार्ग निर्दिष्ट था, उन्हें लीला के आयोजन में भाव भरना था। अष्टछापी कवियों में लीला के आनंद का प्रवाह है। रसखान भी इसी तरह की भक्ति को अपनाते हैं। वे ब्रजमाधुरी के सौन्दर्य और सुषमा में सराबोर हैं। जहाँ तक मीरा की भक्ति का प्रश्न है, पहली बात तो यही कि उन्होंने अपने को कहीं दीक्षित नहीं किया था। इसलिए उनके गिरधर नागर का स्वरूप भी अलग है। उनका गिरधर इतना विराट हो जाता है कि उसमें सगुण, निर्गुण और सूफ़ी सभी समा गए हैं। मीरा ने जो रास्ता चुना वह वाद, विचार, सिद्धांत गढ़ मढ़ की लकीर में नहीं सिमटता है। उनकी भाव समाधि चौखटों को तोड़ देती है। मीरा की भक्ति ने यह ताकत कहाँ से प्राप्त की था? निस्संदेह यह उनके विद्रोही तेवर का ही हिस्सा है, जो मीरा एक सिरे पर पारिवारिक और सामाजिक संरचना की जकड़न को हटाती हैं और दूसरे सिरे पर अपनी भावुकता से भक्ति के अनेक विभेदों को लाँघ जाती हैं।

मीरा, जीवन की सरसता की खोज में निरंतर भटकती रही। इसके लिए उन्हें यातना और प्रतारणा भी सहनी पड़ी लेकिन वे अपने पथ पर अडिग रहीं। अपनी कष्ट और पीड़ा में

विभिन्न नामों से ईश्वर का स्मरण किया। उनकी भक्ति का मूल सूत्र इतना ही है। लेकिन फिर भी उनकी भक्ति का विश्लेषण करें तो उन्होंने सबसे ज्यादा अपने प्रियतम गिरधर नागर को ही याद किया है। इसके अतिरिक्त कृष्ण के सौन्दर्य पर वह मुग्ध हैं। कृष्ण लीला को उन्होंने रुचि से रचा है। बात यहीं तक होती तो वह सगुण भक्ति में खप जाती। लेकिन वे तो अज्ञात प्रियतम रमैया जोगी और गरीब नेवाज की बार-बार पुकार करती हैं। इससे ऐसा लगता है कि उन्होंने अपने समय में प्रचलित भक्ति के सभी प्रकार के मुहावरों को आत्मसात किया। उससे अपनी भावनात्मकता प्रगाढ़ कर भक्ति का संश्लिष्ट रूप निर्मित किया। जिसे उन्होंने कोई नाम नहीं दिया। बाद में उनका कोई अनुयायी भी नहीं हुआ। लेकिन लोक मानस पर उनकी छाप अमिट है। उनकी इस भक्ति को यदि समझना चाहें तो प्रीति और माधुर्य इन दो शब्दों के वजन से समझा जा सकता है।

जनश्रुति और भक्त परंपरा में प्रचलित है कि एक बारात के दूल्हे को देखकर अबोध बच्ची मीरा माता से पूछ बैठी कि - मेरा वर कौन है? माता ने बच्ची की जिज्ञासा को शांत करने के लिए गिरधर की मूर्ति की ओर संकेत कर दिया। बस तभी से मीरा ने गिरधर को हृदय में बसा लिया। दूसरी अनुश्रुति यह है कि मीरा के दादा दूदा जी साधु की खूब आवभगत किया करते थे। कहते हैं एक बार बच्ची मीरा ने एक साधु के पास गिरधर की मूर्ति देखी और उस पर मुग्ध हो गई। उस मूर्ति को पाने की हठ करने लगी। साधु ने उसे मूर्ति नहीं दी। कहते हैं कि रात को स्वप्न में भगवान ने साधु को मूर्ति लौटाने की प्रेरणा दी। उसने मीरा को वह मूर्ति दे दी। यदि इन दोनों घटनाओं और अनुश्रुति का विश्लेषण किया जाय तो एक ही बात सामने आती है कि मीरा ने गिरधर की उपासना की। दूसरी जो बात उभरती है, वह यह है कि वे अबोध और अचेत दशा से भक्ति की ओर उन्मुख हुई। मीरा की भक्ति में यह बार-बार देखा जा सकता है कि अनायास ही वह कृष्ण की अगाध भक्ति में लीन हो गई। इसके पीछे कोई तर्क, कारण, मत और विचार नहीं है। हृदय में भाव उपजा और मीरा कृष्णमय हो गई। मीरा के ही शब्दों में -

मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरे पति सोई।
छाड़ि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई।
संतन ढिंग बैठि बैठि लोक लाज खोई।
अँसुवन जल सींचि, सींचि प्रेम बेल बोई।
अब तो बेल फैल गई, आणँद फल होई।
भगति देखि राजी हुई, जगति देखि रोई।
दासी मीरा लाल गिरधर तारो अब मोहीं।।

7.4 मीरा की स्वाभाविक भक्ति

मीरा त्रिविध ताप से मुक्ति के लिए ईश्वर की शरण में गईं। इसके पीछे उनका कोई वैचारिक आग्रह नहीं था, एक नैतिक जरूरत थी। क्योंकि समाज के नीतिशास्त्र ने उन्हें तरह-तरह के विशेषण से नवाजा था। उन्हें पागल, बावली और कुलनासी कहा गया। ऐसे में अपने मन को धीरज देने के लिए और अपनी सार्थकता को प्रमाणित करने के लिए भक्ति ही मीरा का सहारा था। समाज के साथ संघर्ष में मीरा अकेली थीं। ऐसे में मन के संशय और भय को मिटाने के लिए भक्ति उनके असुरक्षित जीवन की स्वाभाविक और करुण पुकार है। मीरा, गिरधर नागर की बार बार पुकार, क्या अपने शारीरिक अस्तित्व की रक्षा के लिए करती हैं! यदि ऐसा होता तो जहर पीने और साँप को गले लगाने का साहस मीरा नहीं दिखा पाती। वास्तव में मीरा जिस समाज से संघर्ष कर रही थीं उसमें उन्हें नैतिक बल की जरूरत थी और इसे उन्होंने भक्ति से प्राप्त किया। दूसरा इसी से

जुड़ा प्रश्न है कि मीरा ने कृष्ण की शरण में अपना मस्तक क्यों झुकाया। इसका एक कारण यह है कि कृष्ण उत्सव हैं। मीरा उससे रस लेकर अपने भावों के निर्जन रेगिस्तान में हरियाली भरना चाहती थीं। कृष्ण भक्ति उन्हें जीवन को कलात्मक रूप से जीने का रहस्य सिखलाती है। इस भक्ति में कवयित्री के भावों को रचनात्मक बनाने की क्षमता थी। इसीलिए उन्हें अपनी सूनी सेज पर किसी के आने का आभास जैसा लगता है। मीरा में जो कुछ भी मिलता है उसके पीछे न समाज सुधार है और न सिद्धांत को गढ़ने की आकांक्षा। वह उनकी उस व्यक्तिगत प्रेरणा के कारण संभव हुआ जिसमें उनके प्रति समाज के रुख और तेवर का अनुकूल नहीं होना था। मीरा को समझने में समाज ने जो भूल की उस गलती को सुधारने में मीरा लोक लाज के सारे बंधन तोड़ देती हैं। उन्मुक्त भाव से पाँव में घुँघरू बाँधकर थिरकती हैं। अपने भावावेग के प्रकाशन के लिए मीरा कहती हैं -

श्री गिरधर आगे नाचूँगी।
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊँ प्रेमी जन कूँ जाचूँगी।
प्रेम प्रीत की बाँधि घूँघरु सुरत की कछनी काछूँगी।
लोक लाज कुल की मरजादा यामें एक न राखूँगी।
पिव के पलँगा जा पौढूँगी, मीरा हरि रंग राचूँगी।

मीरा के मन में कृष्ण के लिए इतना अनुराग उपजा कि उन्हें अपना प्रियतम मानने लगीं। उसके लिए सारी मर्यादा को चुनौती दे डाली। अब प्रश्न उठता है कि क्या यह एक एक नाटक की तरह घटित हो गया अथवा इसमें कोई पारलौकिक प्रेरणा है। निस्संदेह ऐसा कुछ भी नहीं है। मीरा के जीवन से ही इसके रास्ते निकलते हैं। मीरा का सौन्दर्य बोध आकर्षण में बदलता है, आकर्षण प्रेम में और प्रेम भक्ति में।

7.5 मीरा की मधुरा भक्ति

नारदीय भक्ति सूत्र में गोपीभाव से की गई भक्ति को माधुर्य भक्ति कहा गया है। मीरा की विशेषता है कि राधा और गोपी स्वयं वह बनी हैं। नारी होने के नाते उनका अनुभव गोपी भाव से जुड़कर बड़ा ही प्रामाणिक बन गया है। सूर और मीरा की भक्ति में यहीं अंतर दृष्टिगत होने लगता है। सूर के स्वप्न में स्वतंत्र प्रेम की आकांक्षा है लेकिन उनके काव्य में राधा और गोपी के माध्यम से विचार सामने आते हैं। मीरा स्वयं गोपी बन कर अपने समाज को खुद ही आईना दिखाने लगती हैं। मीरा की भक्ति के दर्द में निजी अनुभूति है। उनके यहाँ भजन, पूजन, प्रसाद, सेवा, भोग और कीर्तन की मंडली नहीं है। भावों का गंगाजल ही उनका प्रसाद, सेवा और भोग है। गिरधर से स्नेह रखने का जिक्र करती हुई ऊदाबाई से मीरा दृढ़तापूर्वक कहती हैं -

भाव भगत भूषण सज शील संतों सिंगार।
ओढ़ी चूनर प्रेम की, गिरधर जी भरतार।
ऊदाबाई मन समझ, जावो अपने धाम।
राजपाट भोगो तुम्हीं हमें न ता सूँ काम।

मीरा ने गिरधर को पिया मान लिया था। इस पिया का सौन्दर्य ऐसा था कि वे आकर्षण में बँधती चली गईं। मनमोहन के माथे पर मोर मुकुट है। गले में बैजन्ती माला है, पीताम्बर पहने हैं। छवि मनोहर है। उनकी भवें टेढ़ी हैं, मुरली टेढ़ी हैं, पाग टेढ़ी हैं, कटि टेढ़ी है। नटवर की तरह की तिरछी अदाएँ हैं। ऐसे रूप को मीरा मन में धारण करती है। उससे प्रेम करती हैं। इसमें खतरा कम बड़ा नहीं है। क्योंकि इस प्रेम और शृंगार की अनुभूतियों का उद्देश्य आध्यात्मिक है। इसका स्थूल शृंगार में परिवर्तन आसानी से हो सकता है।

जैसाकि कृष्ण भक्तों के साथ अक्सर होता आया है। मीरा ने इस जोखिम को उठाया ही नहीं, सही मायने में उसे परिभाषित भी किया। शृंगारिक शब्दावली के प्रयोग के बाद भी मीरा में वह प्रेम स्थूल प्रेम से परे हो जाता है। उनकी अपने आराध्य के प्रति निष्ठा में गरिमा बरकरार रहती है। वे प्रियतम से रूठती हैं, वे उसे मनाती हैं और समाज के सामने स्वीकार करती हैं। लेकिन उस दांपत्य में मर्यादा बनी रहती है। उसमें काम और क्रीड़ा भाव नहीं है। वे पिया के साथ एकाकार हो जाने को आतुर हैं, लेकिन उसमें दूल्हा और दुल्हिन का आवेग नहीं है। यही गोपीभाव की भक्ति है जिसमें शरीर, इंद्रियों और स्वार्थ से ऊपर उठकर प्रगाढ़ और घनिष्ठ अनुभूति से भक्ति की जाती है -

आस पिया जाण न दीजै हो।।
तन मन धन करि वारणै हिरदे धरि लीजै हो।
आव सखी मिलि देखिये नैणों रस पीजै, हो।
जिह जिह विधि रीझै हरी, सोई विधि कीजै हो।
सुंदर स्याम सुहावणा मुख देख्या जीजै हो।
मीरा के प्रभु रामजी बाड़ भागण रीझै हो।।

मीरा की कृष्ण से प्रीत बढ़ती है। विरह होता है। उपालंभ और उलाहने का दौर शुरू होता है। प्रेम दीवानापने की हद तक पहुँच जाता है। मीरा सारे संसार के सामने पग घुँघरू बाँधकर कृष्ण को रिझाने के लिए दृढ़ता से खड़ी हो जाती हैं। प्रेम ने उनमें ऐसी उर्जा भर दी है कि मन चंचल हो गया, हृदय आनंद से भर गया, चित्त में मदहोशी छा गई। साँवरे के रंग में रँगी उनकी चेतना को दूसरा रंग ही नजर नहीं आया। मीरा के प्रेम, भक्ति और आध्यात्म को अलग-अलग नहीं देखा जा सकता। ये उनके महाभाव के संपृक्त रूप हैं।

गोपी के रूप में मीरा की अनुभूति और अभिलाषाएँ क्या क्या हैं, इसकी चर्चा भी होनी आवश्यक है। मीरा कृष्ण से निकटता चाहती हैं। इसलिए प्रिय की प्रतीक्षा में पथ को अपने भवन से खड़ी देखती रहती हैं। उनके आने पर कृष्ण के चरणों से लिपट जाने की अभिलाषा रखती हैं। उनके साथ रात दिन खेल खेलना और उन्हें रिझाने की इच्छा है। शृंगार भी पिय कृष्ण के अनुकूल करना चाहती हैं। उस पर बार-बार न्यौछावर हो जाने की लालसा है। पिय उनके इतना नजदीक है कि वह हिय में बसता है। उसके लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं है। पिय स्थूल शरीर का पिंड नहीं है। वह अविनाशी और अमर है। संसार के मिटने पर भी स्थिर रहेगा। इस सैंया के साथ मीरा सच्ची प्रीति करती हैं। प्रीति का माधुर्य ऐसा है कि मीरा कहती हैं -

राम तने रँग राची, राणा मैं तो साँवलिया रँगराची, रे।
ताल पखावज मिरदंग बाजा, साधा आगे नाची रे।
कोई कहे मीरा भई बावरी, कोई कहे मद माती रे।
विष का प्याला राणा भेज्या, अमृत कर आरोगी रे।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, जनम जनम की दासी रे।

मीरा की प्रीत गहरी है तो वियोग भी उतना ही तीखा है। मिलन की कामना में गिरिधर का प्रेम एक उमंग मन में भरता है, उसके नहीं मिलने पर विक्षोम होता है। जितनी तन्मयता से कृष्ण को अपनाती है उससे उतनी ही अपेक्षा भी रखती हैं। उसके वियोग में खान पान बिसरना, हृदय में शूल चुभना, रात में तारे गिनना, और बाट जोहना मीरा की दिनचर्या बन गई। एक विरहिणी नायिका पति वियोग में जिस तरह से अनुभव कर सकती है वैसा अनुभव मीरा को होता है। लेकिन विशिष्टता इसमें है कि दर्द ने उन्हें "दीवाणी" बना दिया है। देखा जाए तो लोकजीवन के विरह में यह संभव नहीं। भक्ति की आध्यात्मिक शक्ति ही मीरा को दीवाना बनने का रास्ता देती है।

मीरा में विरह का अनुभव तीव्र और सघन है। मध्यकालीन विरहिणी नायिका सखी से अपनी बात कह कर चित्त को शांत कर लेती है लेकिन मीरा का दुःखड़ा उसके प्रियतम के सिवा कोई सुनने वाला नहीं है। यही प्रियतम उसके अँधेरी मंदिर का ज्योति है। प्रकृति में मीरा के दुख का विस्तार हो जाता है। दादुर, मोर, पपीहा और कोयल जैसे उसके प्रियतम को बुलाने की टेर कर रहे हों। थोड़ी देर के लिए यदि आध्यात्मिकता से दूर भी हट जाएँ तो मीरा के यहाँ लौकिक संवेदना के स्पंदन भी बड़े मार्मिक जान पड़ते हैं। होली के उत्सव के लिए मीरा कहती हैं -

किण सँग खेलूँ होली, पिया तज गये हैं अकेली।।
माणिक मोती सब हम छोड़ गल में पहली सेली।
भोजन भवन भलो नहीं लागै पिया कारण भई गेली।
मुझे दूरी क्यूँ म्हेली।

विरह संगीत में ढलने लगता है। संगीत की अनुभूति की सूक्ष्मता, तीव्रता, सघनता और भावुकता शब्दों में उतर आते हैं। व्यथा में डूबी नायिका को राग और रागिनियाँ मूर्तिमान कर देती हैं। सावन के एक दृश्य में नायिका बादल को उलाहना देती है। मतवाला बदरा हरि का संदेसा नहीं लाता है। उन्हें विरहिणी जानकर डराता है। मीरा बाहर प्रकृति में बादल के रूप को देखती हैं और अपने भीतरी हृदय के अंधकार से उसकी तुलना करती हैं। विरह काली नागिन की तरह है। उसमें फूत्कार, चीत्कार और क्रोध भरा है। ऐसे में बिजली का चमकना और पवन का मधुर झोंका बाजे की तरह गुंजित होता है चित्त में आशा बँधती है। आँखें मेह की तरह बरसती हैं। चित्त में आशा और निराशा का जो खेल चल रहा है वह आँखों में झड़ी लगा देता है। भाव चित्त में पैदा होता है आँख में बरसता है -

मतबारो बादल आए रे, हरि को सदेसो कबहुँ न लाए रे।।
दादर मोर पपइया बोलै, कोयल सबद सुणाए रे।।
(इक) कारी अँधियारी बिजरी चमकै, बिरहणि अति डरवाए रे।
(इक) गाजै बाजै पवन मधुरिया, मेहा अति झड़ लाए रे।
(इक) कारी नाग बिरह अतिजारी, मीरा मन हरि भाए रे।।

गोपाल गिरधर, घनश्याम और नटवर की छवि से मीरा का सर्जक मन अटूट संबंध गाँठता है। उससे थोड़ी भी दूरी वे सहन नहीं कर पाती हैं। यह भक्ति की विशेषता है कि वह पराए से भी आत्मीय संबंध स्थापित कर सकती है, पत्थर को गीला कर देती है, नर और नारायण के भेद को मिटा देती है। मीरा की मधुर भक्ति तो उन्हें राधा ही बना देती है। उनके महल को वृंदावन धाम और आँगन को कुंजों की छाँह बना देती है।

7.6 मीरा की भक्ति का रहस्यात्मक स्वरूप

मीरा कृष्ण प्रेम के एक पहलू को पकड़कर उस हद पर पहुँच गई थी जहाँ सारी लकीर मिट जाती है। अपने दीवानेपन में मीरा संप्रदाय के बंधन को तोड़कर केवल ईश्वर का स्मरण करती है। जो सब कुछ से परे है। मध्यकाल में सगुण और निर्गुण का द्वंद्व कम नहीं है। कबीर, सूर और तुलसी को इसका सामना करना पड़ा। सूर उद्धव को निर्गुण का दार्शनिक मोहरा बनाते हैं। मीरा के हृदय में प्रेम की ऐसी धारा उमड़ती है कि सगुण, निर्गुण, हिंदू और मुस्लिम के बीच अंतर नहीं रह जाता। मीरा के लिए भक्ति और उपासना मूल विषयवस्तु थी। नाम तो केवल एक प्रतीक है। मीरा निर्गुण शब्दावली की सरसता से उसी तरह व्यवहार करती हैं जिस तरह नाथपंथी अवधूत के, विराग और वैराग्य का करती हैं। मीरा निर्गुणपंथी भक्तों की तरह सुहागिन मानकर पिया को ढूँढ़ने निकली थीं। इसलिए चुनरिया उन्हें ओढ़नी पड़ी। कबीर में चूनर में दाग लगने की चिंता है मीरा उसमें प्रेम रस

की बूँद डाल देती है। इससे उसमें रस और रंग भर जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि पिय कोई अगोचर नहीं है। वह गिरधर है। मीरा कहती हैं -

भीजै चुनिरया प्रेम रस बूँदन।
आरति साज के चली है सुहागिन पिय अपने ढूँढन।
मिलन कठिन है कैसे मिलौगी पिय जाय।
समझ सोचि पग धरौ जतन से बार बार डिग जाय।

भक्त और भगवान के बीच एकाकार होने का अनुभव भक्तों ने दूल्हा-दुल्हिन सजनी और प्रीतम के ही बिंब के रूप में प्रस्तुत किया है क्योंकि भावनात्मक सामीप्य के लिए इससे श्रेष्ठ रूपक गढ़े नहीं गए। यद्यपि जीव और ब्रह्म के रूप में पिय और सुहागिन का संबंध बताया गया है लेकिन भारतीय रहस्य साधना में मुख्यतः माधुर्य भाव को ही आधार बनाया गया है। मीरा में भी इसी भाव को परिलक्षित किया जा सकता है। प्रेममूलक रहस्यवाद ही ज्यादातर उनकी कविता में मिलता है। उसमें दर्शन ज्ञान और साधना से अधिक भाव की साधना थी। इसलिए अनिवाशी प्रियतम और कृष्ण के बीच तात्विक अंतर उनमें नहीं है।

निर्गुण में गुरु को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। मीरा ऐसे गुरु की भी बात करती हैं जिन्होंने उन्हें प्रकाश की ज्योति दी। ज्ञान का ऐसा पाठ पढ़ाया जिससे पिंड में ही ब्रह्मांड का उन्हें अनुभव हुआ। गुरु ज्ञान से तन की दुरमति भाग गई। विवेक का प्रकाश हुआ। तन दिया बना और मन बाती बनी। उसमें प्रेम का तेल डाला गया जो चारों प्रहर जल रहा है। जिस प्रकार कुँवारी कन्या की माँग सँवार कर प्रणय पूरा होता है उसी प्रकार मीरा ज्ञान के सूक्ष्म विवेचन से मति की माँग संवारती है। तब साँवरे पर यौवन लुटाने का संकल्प लेती है। मीरा के इस पद में साधना की झाँकी दी गई है। गुरु साधना के मार्ग को सरल बनाता है। वह पवित्रता का भाव भरता है जिससे साधक उस परम को पाने की व्याकुलता का अनुभव करता है -

तेरे कारन साँवरे, धन जोबान बारों हो।
या सेजिया बहु रंग की, बहु फूल बिछाये हो।
पंथ मैं जोहौं स्याम का अजहुँ नहिं आये हो।
सावन भादों उमड़ौं, वरषा रितु आई हो।
मौंह घटा घन घेरि के, नैनन झरि लाई हो।
माता पिता तुम को दियो, तुमही भल जानो हो।
तुम तजि और भतार को मन में नहीं आनों हो।
तुम प्रभु पूरन ब्रह्म हो, पूरन पद दीजै हो।
मीरा व्याकुल बिरहिनी अपनी कर लीजै हो।

भक्त अपनी मस्ती में मन में वसंत और होली का अनुभव करता है। ये चित्र कवियों को इसलिए प्रिय रहे हैं कि इसमें भी दांपत्य रति की तरह मिलन का भाव मनमोहक और अंतरंग होता है। होली में खुलापन होता है। होली में सारे सामाजिक बंधन को खुला छोड़ दिया जाता है। साधक भी सांसारिक बंधन से मुक्ति की होली खेलता है। होली रंग, रस और आनंद का मंगलमय त्योहार है। इसमें प्रवास में बसता पिय भी सजनी से मिलने जरूर आता है। मीरा अपने भाव धरातल पर होली खेलती हैं। उस खेल का ढंग अनोखा है। उसके रंग अलग हैं। प्रियतम भी अलग है। फागुन की हवा में खुमारी होती है। यह जल्द बीत भी जाता है। इसलिए "दिन चार रे" कहा गया है। जल्द उसमें सम्मिलित होने का आह्वान किया जाता है नहीं तो वह बीत जाएगा। मीरा के यहाँ करताल और झाँझ का संगीत नहीं अपितु अपने भीतर अनहद का नाद ही बाजा के प्रतीक रूप में है। शील और

संतोष का केसर घोलकर प्रीत की पिचकारी से रंग की बौछार होती है। घर के भीतर दरवाजे खोल दिए गए हैं और लोक लाज को मिटा दिया गया है। प्रिय से मिलने की उमंग में मीरा स्वयं को तीव्र अनुभूतियों से भरी पाती हैं -

फागन के दिन चार रे होरी खेल मना रे ।
बिन करताल पखावज बाजै अनहद की झनकार रे।।
सील संतोष की केसर घोली प्रेम प्रीत पिचकारी रे।
घट के पट सब खोल दिए हैं लोक लाज सब डार रे।।
होरी खेलि पीव घर आए सोइ प्यारी प्रिय प्यार रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण कंवल बलिहारी रे।।

7.7 मीरा की भक्ति का शास्त्रीय स्वरूप

मीरा की भक्ति के संबंध में यह चर्चा हमने पहले भी की है कि वे सहज रूप में कृष्ण भक्ति की ओर उन्मुख हुई थीं। उनका किसी मतवाद से लेना देना नहीं था। लेकिन उस सहज भक्ति के लिए शास्त्रकारों ने प्रणाली निर्धारित कर दी है। उसे नवधा भक्ति कहा गया है। नवधा भक्ति के लिए सूत्र दिए गए -

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पापसेवनम्
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यात्यनिवेदनम्।।

नवधा भक्ति के निवेदन, भजन, श्रवण कीर्तन, पादसेवन; शरणागति, दास्य आदि रूप मीरा के भक्ति पदों में गुंथे हुए हैं। मीरा अपने प्रभु के चरणों की दासी बनना चाहती हैं। चरण वंदना और गुण कथन को बार बार दोहराती हैं। उनकी नवधा भक्ति भाव विस्तार को एक ढाँचा देती है। जिसमें भक्त के बोध भाव और क्रिया का समाहार हो जाता है।

7.7.1 शरणागति एवं गुण स्मरण

मीरा अपने कष्ट को दूर करने के लिए और भवसागर को पार करने के लिए प्रभु की शरण में जाती हैं। भवसागर का मिथ, मरने के बाद बेहतर दशा को प्राप्त करने की कामना के आधार पर निर्मित है। इस बोध में मीरा के समाज का यथार्थ छिपा है, जहाँ जीवन इतना नारकीय हो गया था कि भवसागर बन गया था। इससे उबरने के लिए कोई सहारा नहीं था। अतः हार और पराजय की मनः स्थिति में मीरा प्रभु के शरण की गुहार करती हैं। कठिन परिस्थिति में जीने का विश्वास वहीं से अर्जित करती हैं। भक्तों का उदाहरण देकर वह अपना दुखड़ा छिपा कर रख देती हैं। हिरण्यकश्यप, ग्राह्य और दुःशासन आदि उनका अपना समाज है, जिसमें वे जी रही थीं। ऐसे समाज पर उनकी प्रतिक्रिया बहुत स्पष्ट और तीखी है। जिसकी परवाह नहीं करने की बात बार बार वे करती हैं। लेकिन जिसके दंश के बच नहीं पातीं। वह उन्हें डँसता है। विष देता है। ऐसे में अबला के लिए कोई ऐसी संस्था नहीं थी जहाँ वह रो सके। अतः केवल प्रभु के चरणों में ही वह अपना कष्ट बता पाती है। मीरा की कविता, उनके अपने भाव और रंग से रंगी है उसमें समाज बहुत कम स्थान घेरता है लेकिन जितना भी है, उसकी भूमिका खलनायक की तरह ही है-

हरि तुम हरो जन की भीर।
द्रौपदी की लाज राखी तुरत बाढ़्यो चीर।
भक्त कारण रूप नरहरि धर्‌यौ आप शरीर।
हिरणाकुश मारि लीन्ह धर्‌यौ नाहिं धीर।
बूड़तो गजराज राख्यौ कियौ बाहर नीर।
दासी मीरा लाल गिरधर चरण कँवल पै सीर।।

7.7.2 नाम सुमिरन

नाम का माहात्म्य ईश्वर की सत्ता को स्थापित करने का साधन है। नाम पर बल, सगुण और निर्गुण के सभी भक्तों ने दिया है। नाम, सामंत और राजा की सत्ता को चुनौती देता है। सत्ता के प्रतिष्ठान के समानांतर एक ईश्वरीय सत्ता की संरचना गढ़ता है। साबित करता है संसार के अधिपतियों के ऊपर भी एक व्यवस्था है जो बड़ी है। जहाँ समानता है। वहाँ वर्गभेद नहीं है। वहाँ भावों की गहराई ही समृद्धि का प्रतीक है। इसे साबित करने के लिए मीरा ने नाम के प्रभाव से संसार से तर जाने वाले भक्तों की सूची प्रस्तुत की है। यहाँ गणिका, और अजामिल प्रमुख हैं -

पिया तेरे नाम लुभानी हो।
गणिका कीर चढ़वताँ बैकुंठ बसाणी हो।
अरध नाम कुंजर लियो बाकी अवध घटानी हो।
अजामिल से उधरे जमत्रास नसानी हो।
नाम महातम गुरु दियो परतीत पिछाणी हो।

मीरा ने गिरधर का नाम सबसे अधिक गाया है। यह उनकी सार्थक अभिव्यक्ति है। नटवर, नंदलाल, मोहन, स्याम और मन मोहन आदि नामों को भी उन्होंने रखा है लेकिन मीरा का प्रभु तो गिरधर नागर ही है। जिसमें जगत के त्रास से उद्धार करने की क्षमता है। जो भक्तों के दुख को अपने कंधों पर धारण कर सकता है।

7.7.3 दास्य भक्ति

मीरा कृष्ण की चाकरी करना चाहती हैं। दासी के रूप में उनकी कामना गिरधर के चरणों में पूर्ण समर्पण की है। दीनता इसका प्रधान भाव है। प्रभु सामर्थ्य को मीरा जानती हैं। अपने ऊपर कृपा करने का उनसे अनुरोध करती हैं। मीरा अपनी स्थिति के बोध को रखती हैं। यह बोध संसार के विकार से घिरे होने का है। ऐसे में निकलने का रास्ता नहीं सूझता है और प्रभु की टेर लगाती हैं। इसमें टूटी हुई नैया और घनघोर दरिया का बिंब दिया है। प्रभु को पाल बनाकर थामने को कहा है। प्रेम और विरह की बात इसमें भी नहीं भूलती हैं। वह व्यथित मीरा को दुख से छुटकारा दिखाने के लिए आग्रह करती हैं। मीरा गिरधर के साथ जन्मजन्मांतर का संबंध मानती हैं। गिरधर का दरसण पाना वो अपना अधिकार समझती हैं। विरह में उनकी स्थिति, जल के बिना कमल, राम के बिना चंद्रमा जैसी है। विरह दुख नहीं दे रहा अपितु कलेजे को खा रहा है। ऐसे में उनकी पुकार स्वाभाविक सी प्रतीत होती है। उनकी आग तभी शांत होगी जब अंतर्यामी आकर अंग लगा ले। उसे अपना स्वामी मानती हैं। स्वामी पर कुछ हक तो दासी का भी होता ही है। मीरा अपने मनमोहन से ठाकुर और दासी का संबंध बनाकर भी जीना चाहती हैं लेकिन विरह के अकेलेपन को दूर करना चाहती हैं। स्त्री और पुरुष का संबंध दास्य भक्ति में परिभाषित हो जाता है। सामंती व्यवस्था में दास के आधार पर सामंत की शक्ति तय होती थी। दास अपनी सुरक्षा के लिए स्वेच्छा से अधीनता स्वीकार करता था। मीरा के यहाँ ईश्वर और भक्त का संबंध उसी के प्रतिरूप में देखा जाना चाहिए।

डारि गयो मनमोहन पासी।।
आँबा की डालि कोइल इक बोलै, मेरो मरण अरूँ जग केरी हाँसी।
बिरस की मारी मैं बन बन डोलूँ प्रान तजूँ करवत ल्यूँ कासी।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी।।

7.7.4 गुरु महिमा

गुरु का महत्व मध्यकाल के सभी भक्तों ने माना है। सदगुरु जीवन की उलझनों को सुलझाने में मदद करता है। सदगुरु, पंथ खोज में, सच की खोज में अपने अनुभवों से सहायता देता है इसलिए गुरु का ज्ञान अनमोल है। इसमें बौद्धिकता भरी होती थी जिससे जीवन में विकास की दिशा तय होती थी। भक्त संवेदना से संपन्न थे लेकिन बौद्धिकता के लिए उन्होंने गुरु का स्मरण किया। मीरा गुरु को पुराना वैद्य कहती है। उसके पास रोगों को देखने का अनूठा अंदाज होता है। वह शोध से सीखकर प्रयोग करता है। सतगुरु ही विरह का बाण मारता है। वह इंद्रियों को शिथिल करने की सलाह देता है। पथ को पहचानने का विकास देता है। सच्चा गुरु निष्कर्ष नहीं पथ के चुनाव को महत्व देता है। वह साधक के किसी एक अंग को ठीक नहीं करता अपितु कायाकल्प कर देता है। वह संपूर्ण लोक को ही अमर बना देता है -

भर मारी रे बानाँ मेरे सतगुरु बिरह लगाये के।
पावन पंगा कानन बहिरा, सूझत नहीं नैना।
खड़ी खड़ी रे पंथ निहारूँ मरम न कोई जाना।
सतगुरु औषद ऐसी दीन्हीं रुम रुम भइ चैना।
सतगुरु जस्या बैंद न कोई, पूछो बेद पुराना।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर अमर लोक में रहना।

7.7.5 आत्म समर्पण

गहरी निष्ठा में आत्म समर्पण की स्थिति बनती है। श्रद्धा भाव के कारण ही यह बोध होता है। मीरा की कविता का स्वभाव कृष्ण की सुगंध से सुगंधित है। उनका जीवन और मरण दोनों उन्हीं के साथ है। इसमें अपना कुछ भी नहीं बचता है। स्वयं का व्यक्तित्व पूर्ण रूप से तिरोहित हो जाता है। सभी कुछ प्रियतम के अनुसार होने लगता है। उसके अनुसार उठना, बैठना, सोना और जागना पड़ता है। मीरा कहती हैं गिरधर मेरा सच्चा साथी है। उसके रूप पर रीझ गई हूँ। रात रहते उठ जाती हूँ उसे तरह-तरह से मनोरंजित करती हूँ। वह जो देता है पहन लेती हूँ। जो खिलाता है खा लेती हूँ। मेरा और उसका पुराना स्नेह है। उसके बिना क्षण भर रहा नहीं जाता। अपने प्रिय पर उन्हें इतना विश्वास है कि जहाँ बैठाए बैठ जाएँ और बेचे तो बिक जाएँ। ऐसा प्रेम और स्नेह ही मीरा को अमर बनाता है। अपना कुछ भी नहीं है। जो कुछ है उस गिरधर का है। आराध्य के भाव के अनुसार आचरण करना, शील संतोष को चरित्र में उतारना और दृष्टि में समता लाना मीरा की पूजा है। इसे जीवन में धारण करने के बाद वो स्थिति आती है कि भीतर का नाद झंकृत हो उठता है। जीवन से सच्चा वैराग्य मिलता है -

बल्हा मैं बैरागिण हूँगी हो।
जीं जीं भेष म्हाँरो साहिब रीझे सोई सोई भेष धरूँगी हो।।
शील संतोष धरुँ घट भीतर समता पकड़ रहूँगी हो।
जाको नाम निरंजन कहिये ताको ध्यान धरुँगी हो।
गुरु ज्ञान रँगूँ तन कपड़ा मन मुद्रा पेरुँगी हो।
प्रेम प्रीत सूँ हरिगुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी हो।
या तन की मैं करूँ कींगरी रसना राम रटूँगी हो।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर साधां संग रहूँगी हो।

7.8 मीरा की भक्ति में वृंदावन का महत्व

रामभक्ति में जिस तरह से चित्रकूट की महिमा का वर्णन है उसी तरह से कृष्ण भक्ति में वृंदावन का है। वृंदावन मीरा का स्वप्न लोक है। मीरा का यथार्थ उनकी हवेली है। जिसमें उनकी यातना और दर्द की खामोशी छिपी थी। वहाँ उन्होंने अपना भाव लोक निर्मित किया जहाँ सारे दुखों से छुटकारा है। यह लोक वृंदावन धाम है। चित्र में जिस तरह कल्पना को रंग में भरा जाता है यह वृंदावन उसी प्रकार का सुरम्य और भक्ति की गोद में बसा मनोलोक है। वहाँ घर-घर में तुलसी और ठाकुर जी की पूजा नित्य प्रति होती है गोविन्द जी का दर्शन होता है। निर्मल शांत यमुना धीरे धीरे प्रवाहित होती है, दूध और दही का भोजन है। रत्न सिंहासन पर बिराजमान मूर्ति का मुकुट तुलसी दल का बना है। कुंज में मुरली की तान सुनाई देती है। मीरा ने अपने यथार्थ को भूलकर वृंदावन में मन रमाने की ठानी है। यह स्थान केवल कृष्ण मूर्ति के कारण प्रिय नहीं है। इस स्थान की प्रकृति भी अद्‌भुत है। कुंज नदी, मुरली में एक धीमा लय है जिसमें मधुर सौन्दर्य और रस भरा है। कृष्ण भक्तों की विशेषता रही है कि वह ब्रज की लता पशु पक्षी गोप ग्वालिन सभी से स्नेह रखते हैं। वहाँ के एक एक कण में कृष्ण को ढूँढ़ते हैं। किसी भी भक्ति में प्रकृति, मनुष्य और मनुष्येतर प्राणी के मध्य ऐसा सहृदय संबंध बड़ी मुश्किल से मिलेगा। मीरा भी कहती हैं -

गोहनें गुपाल फिरुँ ऐसी आवत मन मैं।
काछी गोप भेष मुकुट गोधन संग चारूँ।।
हम भई गुल्म लता वृन्दावन रैनाँ।
पशु पक्षी मरकट सुनी श्रवन सुनंत बैना।

7.9 कृष्ण लीला की रसिक अनुभूति

मीरा कृष्ण के साथ अपने व्यक्तिगत संबंध को स्वीकार करती हैं। कृष्ण को उन्होंने अपना पति कहा है। इसके साथ साथ कृष्ण की लीला धारा की रसिक अनुभूति से अपने भक्ति भाव को सींचती हैं। कृष्ण के जीवन की कुछ रमणीक घटनाएँ हैं। बाल लीला, गोचारण, माखन चोरी, पनघट लीला, दधिबेचन, चीर हरण, होरी, मथुरा प्रवास और उद्धव प्रसंग आदि, जिस पर कृष्ण भक्त रस की वर्षा करते रहे हैं। मीरा ने अपने व्यक्तिगत मनोभाव का प्रकाशन ही कविता में ज्यादातर किया है। लेकिन कृष्ण लीला के इन प्रसंगों का संक्षिप्त रूप उन्होंने भी अपनाया क्योंकि लीला में प्रवेश के बिना कृष्ण भक्ति अधूरी है। इसमें मीरा ने उस तरह से प्रसंग निर्मित कर भावभूमि तैयार नहीं की जैसा सूर और अष्टछापी कवियों ने किया है। फिर भी मीरा, लीला में मानवीय मनोभाव चित्रण करने में पीछे नहीं रही हैं। दधि बेचन के प्रसंग में एक पद उल्लेखनीय है -

या ब्रज में कछू देख्यो री टोना।
ले मटुकी सिर चली गुजरिया, आगे मिलि बाबानंदजी का छोना।
दधि को नाम बिसरि गयो प्यारी, ले लहु री कोई स्याम सलोना।
वृन्दावन की कुंज गलिन में, आँख लगाइ गयो मन मोहना।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर; सुन्दर स्याम सुधर रस लोना।।

7.10 मीरा के आराध्य

वल्लभ संप्रदाय के वार्ताकार, चैतन्य संप्रदाय के प्रियादास आदि ने मीरा को कृष्ण की उपासिका कहा है। लोक मानस में भी मीरा का स्मरण कृष्ण दीवानी के रूप में किया जाता

है। मीरा ने गिरधर को मोहन, मनमोहन, नंदनंदन, बाँके बिहारी, गोपाल, किसन, मुरारी आदि नामों की संज्ञा दी। कृष्ण के जीवन के प्रसंगों और घटनाओं का उल्लेख किया। मीरा ने जगह जगह पर राम, निरंजन, हरि, जोगिया आदि नामों की भी चर्चा की है। निर्गुणिया भक्तों की तरह सतगुरु की भी चर्चा की है। वृन्दावन जैसे अगम देश में भी जाने की परिकल्पना की, जहाँ प्रेम ही प्रेम है। इसी तरह कुछ साधनात्मक शब्दावली, उपदेश और काल चिंतन पर उनके विचार निर्गुण की सीमा को छूने लगते हैं–

नाहिं ऐसो जनम बार बार।
का जानूँ कछु पुण्य प्रगटे, मनुसा अवतार।
बढ़त छिन छिन घटत पल पल जात लगे न बार।
बिरछ के ज्यूँ पात टूटे, बहुरि न लागे डार।
भौ सागर अति जोरे कहिये अनंत उड़ी धार।

काल का डर सबसे अधिक निर्गुण में ही मिलता है। मनुष्य जनम को सार्थक करने की बात भी वहाँ सबसे अधिक की गई है। इतना ही नहीं मीरा ने पाखंड, कर्मकांड और आडम्बर का भी विरोध दबी जबान से किया है। तीरथ व्रत भगवा पहन कर संन्यास को वे झूठा बताती हैं। उनके अनुसार सच्ची लगन मन में होती है। उसे पवित्र करके ईश्वर को पाने की वे बात करती हैं।

भज मन चरण कंवल अबिनासी।।
कहा भयो तीरथ ब्रत कीन्हें कहा लिए करवत कासी।
कहा भयो है भगवा पह्रयों घर तज भए सन्यासी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर काटो जनम की फाँसी।।

सूफियों का प्रभाव भी मीरा में कम नहीं है। सूफियों ने प्रेम को इबादत बताया। इश्क औ मुहब्बत को भक्ति कहा। खुदा को महबूब सनम माना। मीरा ने सूफियों के प्रेममार्गी रास्ते से कृष्ण भक्ति को रँगा। उनकी कविता सौन्दर्य से आरंभ होती है और मिलन में समाप्त होती है। महबूब के इंतजार में तन्हाइयों का वैसा ही आलम होता है। शब्दावली में गरीब निवाज का प्रयोग किया गया है। जिसे सूफ़ी अपने पीर के लिए करते रहे हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है "मीराबाई की उपासना माधुर्य भाव की थी अर्थात वे अपने इष्टदेव श्री कृष्ण की उपासना में रहस्य का समावेश अनिवार्य है। इसी ढंग की उपासना का प्रचार सूफ़ी भी कर रहे थे अतः उनका संस्कार भी इन पर अवश्य कुछ पड़ा। जब लोग इन्हें खुले मैदान मंदिरों में पुरुषों के सामने जाने से मना करते तब वे कहतीं कि कृष्ण के अतिरिक्त और पुरुष है कौन जिसके सामने लज्जा करुँ?"

मीरा की भक्ति का छोर चारों धाराओं से मिला है। उन्होंने सभी से रस ग्रहण किया। निर्गुण के अगम अगोचर, सूफ़ी के गरीब नेवाज, नाथ के जोगिया तथा राममार्गी के राम को अपने गिरधर के साथ इस प्रकार मिलाया कि भक्ति का संश्लिष्ट रूप तैयार हो गया जिसमें मानवीयता का भाव भरा हुआ था। जो किसी प्रकार के आग्रह से मुक्त था। मीरा को इसके प्रसार के लिए किसी गढ़ मठ और ठाकुर बाड़ी बनाने की जरूरत नहीं पड़ी। उसे लोकमानस ने जीवित रखा और उसका आदर किया। मीरा के भजन सिंध के पंजाब और समूचे उत्तर भारत में गाए जाते हैं। सूफ़ी अपनी कव्वाली में मीरा को रव्वाजा की दिवाणी मानते हैं। निर्गुण पंथी उन्हें साहिब और सतगुरु की चेली कहते हैं। नाथपंथी उसे अवधूत की भक्ति कहते हैं। मीरा ने दरअसल उस इंसानी दर्द को अनुभव किया था जिसे सहकर इंसान भगवान बनने लगता है। जहाँ सारी सरहद खत्म हो जाती है। शास्त्रीय भाषा में कहें तो मीरा ने वैधी अथवा मर्यादा भक्ति से अलग अपना रास्ता बनाया। जिसे शास्त्र ने पराभक्ति की सज्ञा दी है। जहाँ लोक और वेद, अगम और निगम, शास्त्र और व्यवहार का

द्वंद्व नहीं होता। जिसमें क्षण भंगुर जीवन के बीच अमर और शाश्वत की तलाश है। अनिवाशी की खोज है।

7.11 सारांश

मीरा की भक्ति कृष्ण भक्ति है। उसमें किसी प्रकार संकीर्णता नहीं है। वह उदार मानवीय अनुभूति की साक्षी है। उन्होंने अपनी पीड़ा के साथ भक्ति को जोड़कर उसे नया आयाम दे दिया। यह उनकी दर्द की दास्तां को बयाँ करती हैं। मीरा नारी के लिए प्रेरणा स्रोत बन गई। उनके अपने समाज ने उन्हें कुलनासी कहा लेकिन लोकमानस ने उन्हें दर्द दिवाणी के रूप में जीवित रखा। मीरा ने अपने समय और समाज के द्वारा दिए गए पर्दे, बंधन और दीवार को ठुकराया इसलिए उन्हें विष दिया गया लेकिन लोकजीवन ने उन्हें बावली, विद्रोही, पीड़ित के रूप में ही पहचाना। मीरा की भक्ति में निर्गुण भक्ति तथा सगुण भक्ति दोनों के ही गुण दिखाई देते हैं। उनकी भक्ति निर्गुण तथा सगुण का एक ऐसा संश्लिष्ट रूप बन गई जिसमें मानवीयता की भावना है।

7.12 अभ्यास प्रश्न

1. नवधा भक्ति की विशेषताएँ बताते हुए मीरा की भक्ति का विवेचन कीजिए।
2. मीरा की भक्ति भावना पर नाथ पंथियों, एवं सूफियों का प्रभाव कहाँ तक पड़ा है? स्पष्ट कीजिए।
3. आराध्य के साथ मीरा के संबंधों का विवेचन कीजिए।
4. मीरा की भक्ति का अन्य कृष्ण भक्त कवियों की भक्ति से तुलना कीजिए।

इकाई 8 मीरा की प्रेमभावना

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 मध्ययुगीन प्रेमभावना का स्वरूप

8.2.1 मीरा का समय और माधुर्यभाव

8.2.2 मीरा का भक्ति वैशिष्ट्य

8.3 मीरा का परिवेश और माधुर्यभाव

8.3.1 मीरा की निजता

8.4 मीरा का प्रेमालम्बन

8.4.1 गिरधरनागर

8.4.2 जोगी और रमैया

8.5 मीरा की सौन्दर्य-सृष्टि

8.6 मीरा की प्रेमभावना के विविध आयाम

8.6.1 प्रेमभावना और स्वच्छन्दता

8.6.2 प्रेमभावना का शास्त्रीय पक्ष

8.6.3 प्रेमभावना और जीवन-मूल्य

8.7 कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा और मीरा की प्रेमभावना

8.8 सारांश

8.9 अभ्यास प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- मध्ययुगीन भक्तिभावना के अन्तर्गत प्रेमानुभूति के स्वरूप और परम्परा को जान सकेंगे;
- तत्कालीन प्रेमभावना की वस्तुगत परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे;
- मीरा की भक्ति-सन्दर्भित प्रेमाकांक्षा को समझ सकेंगे;
- मीरा की प्रेमालम्बन की वास्तविकता पर गहराई से दृष्टिपात कर सकेंगे;
- मीरा की प्रेमभावना के यथार्थ से जुड़े आवश्यक पहलुओं से परिचित हो सकेंगे;
- प्रेम की पीड़ा और उसके सामाजिक पक्ष की अथर्वत्ता को पहचान सकेंगे;
- प्रेमभावना की समझदारी से पुरुष-वर्चस्व वाले समाज में एक स्वाधीन स्त्री व्यक्तित्व के निर्माण की प्रक्रिया को समझ सकेंगे;

- पारंपरिक भक्ति-सन्दर्भों से अलग हटकर एक नए, सार्थक एवं मानवीय भक्ति सन्दर्भ को जान सकेंगे; और
- मीरा के सौन्दर्य बोध को समझ सकेंगे तथा मीरा की प्रेमभावना के विविध आयामों को जानते हुए कृष्णभक्ति परम्परा में मीरा की सृजनधर्मी प्रेमभावना को जान सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य से पूर्व मध्यकाल को हम भक्तिकाल के रूप में जानते हैं। इसका आधार है इस समय के सृजन की मुख्यधारा का भक्ति केन्द्रित होना। इस समय के बड़े रचनाकार कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा आदि सभी ने अपनी भावनाओं और विचारों को भक्ति के माध्यम से व्यक्त किया है। भक्ति के मुख्य आधार हैं – श्रद्धा और प्रेम। अपने किसी महान श्रद्धेय के प्रति जब प्रेमभावना का समावेश हो जाता है तो वही भक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इस तरह भक्ति में प्रेम तत्व वैसे ही समाया रहता है जैसे लकड़ी में अग्नि तत्व। श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति कहा जाता है। किसी भक्त के हृदय में अपने आराध्य के प्रति केवल पूज्यभाव ही नहीं रहता बल्कि उसके साथ-साथ उसके सामीप्य लाभ की आकांक्षा का भी उद्वेग बना रहता है। वह अपने आराध्य से दूर नहीं रहना चाहता, उसे किसी न किसी रूप में पाने की लालसा को वह निरन्तर व्यक्त करता रहता है। अपने आराध्य से अपना रिश्ता कायम करने की भावना को वह निरन्तर प्रकट करता है। हमारे सभी भक्त कवियों ने अपने आराध्य के प्रति पूज्य श्रद्धा भाव रखते हुए भी जो संबंध भावना व्यक्त की है, उसी से उनकी श्रद्धा, प्रेमभाव के संयोग से भक्तिभाव में रूपान्तरित हुई है। कबीर ने स्वयं को अपने राम की बहुरिया के रूप में माना है। सूर ने अपने आराध्य कृष्ण के प्रति सखा-संबंध भावना को उजागर किया है तो तुलसी ने स्वामी-सेवक भाव को। सूफ़ी कवियों ने अपने आराध्य को प्रेमिका के रूप में देखा है, वहीं मीरा ने उसे पति भाव में रखकर अपूर्व साहस, निडरता और चारित्रिक दृढ़ता का परिचय दिया है। उनकी यही संबंध भावना है, जो उनकी प्रेमभावना का आधार बनती है। इसकी विशेषता है कि जहाँ दूसरे रचनाकारों की संबंध भावना में एक निश्चित प्रकार की दूरी और संबंधगत अस्वाभाविकता नजर आती है, वहीं अकेली मीरा है, जहाँ संबंध की सहजता सबसे ज्यादा है और अपने प्रिय से सामीप्य लाभ का सबसे सुदृढ़ माध्यम दाम्पत्यभाव है। कबीर पुरुष हैं और स्वयं को स्त्री रूप में प्रस्तुत करते हैं। आराध्य के प्रति जो सामान्य लिंग धारणा है, वह पुरुष की है, जबकि सूफ़ी कवि उसे उलटकर स्त्री के रूप में लाते हैं जो संबंध की सहजता को लाने में बाधक बनता है। सूर के यहाँ सखा भाव है तो तुलसी के यहाँ सेवक भाव। इनमें भी आराध्य और आराधक की वैसी सहज समीपता नहीं बन पाती, जैसी मीरा के माधुर्य भाव में। मीरा स्त्री है और उनके आराध्य श्री कृष्ण हैं, पुरुष। वे अपने आराध्य को पति रूप में देखती हैं। इस वजह से प्रेमभावना का जितना सहज, सघन और सच्चा स्फुरण उनके काव्य में मिलता है, वैसा अन्यत्र नहीं।

8.2 मध्ययुगीन प्रेमभावना का स्वरूप

मनुष्य के भावों को मनोविज्ञान और सामाजिक संबंध भावना की दृष्टि से स्थायी एवं प्रकृति प्रदत्त माना गया है। इन्हीं भावों की सक्रियता में मानवीय जीवन संचालित और क्रियाशील होता रहा है। इन्हीं में एक स्थायी भाव है रति। यही भाव है जो मनुष्य जीवन में सर्वाधिक व्यापक स्तर पर तथा अनेक रूपों में पिरोया हुआ रहता है। इसलिए साहित्य रचना का आधार, यदि रति भाव को कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। किन्तु मनुष्य जीवन में

रतिभाव का कोई एक रूप नहीं रहा है, वह समय, परिवेश और सामाजिक व्यवस्था से प्रभावित न निर्देशित होकर अनेक रूपों में व्यक्त होता रहा है। उसके ऊपर समय, परिवेश और समाजव्यवस्था का इतना दबाव रहता आया है कि वह अपने निर्मल एवं प्राकृतिक रूप में तभी प्रकट हो पाया है जब कि कोई प्रेमी अपनी प्रेमावस्था की स्वच्छन्द एवं स्वाधीन अभिव्यक्ति के लिए अपना सर्वस्व लुटा देने की स्थिति में पहुँव गया है। हमारे यहाँ मध्यकाल में जहाँ एक ओर प्रेम का स्वरूप अपने समय में सामन्ती ढाँचे की सीमाओं में निर्मित हुआ है, वहीं वह उसका अतिक्रमण करके स्वच्छन्द स्वरूप में भी व्यक्त हुआ है। प्रेम के बारे में कहा गया है कि उसके ऐकान्तिक एवं निजी स्वरूप की अपेक्षा वह प्रेम ज्यादा वरेण्य एवं प्रभावकारी है, जो प्रेमी के सारे जीवन-पथ को सुन्दर एवं रमणीय बना देता है। इस रूप में प्रेम के साथ केवल रतिभाव ही नहीं रहता वरन् उसका स्वरूप विस्तार होकर वह सम्पूर्ण जगत और जीवन का प्रेमी बन जाता है। इसी स्थिति में आधुनिक कवि त्रिलोचन ने कहा कि 'मुझे जगत जीवन का प्रेमी, बना रहा है प्यार तुम्हारा'। इस तरह व्यक्ति भी अपने निजी प्रेम का विस्तार सम्पूर्ण जीवन में करता रहा है। प्रेम की ये दोनों पद्धतियाँ साहित्य-रचना में खासतौर से प्रचलित रही हैं। इन दोनों का समान बिन्दु है इसमें पुरुष-वर्चस्व की व्याप्ति। पुरुष-प्रधान सामाजिक परिवेश में रतिभाव को जो रूप मिल सकता है, उसकी सीमाओं में उसका जो उदात्त स्वरूप बन सकता है, वह भक्तिकालीन कविता में व्यक्त हुआ है। यद्यपि कहा गया है कि भक्ति युग में राम और सीता का प्रेम अत्यन्त उदात्त और आदर्शस्तरीय प्रेम है, जो केवल निजी स्तर तक न रहकर जीवन के विस्तृत कर्म क्षेत्रों में फैला हुआ है। लेकिन इसको गहराई में जाकर देखें तो इस प्रेम में भी बार-बार स्त्री को ही अपने सतीत्व की परीक्षा देनी पड़ती है। उसे ही हर स्थिति में अग्नि-प्रवेश करना पड़ता है। पुरुष के पास बाहुबल और बुद्धिबल से प्राप्त सत्ता है, जिसकी परिधियों से स्त्री बँधी रहती है। इससे ज्यादा स्वच्छन्दता इस समय के उस ऐकान्तिक और लोकबाह्य प्रेम में दिखाई देती है, जहाँ अपने निर्णय के लिए स्त्री को अपेक्षाकृत ज्यादा स्वाधीनता प्राप्त है। हो सकता है कि यह सभ्य समाज के समानान्तर उस सामुदायिक-परम्परा की स्मृति हो, जो तत्कालीन सभ्य सामन्ती समाज की परिधि से दूर आदिवासी एवं अन्य कर्मण्य समाजों में प्रचलित रहा है। कृष्णकाव्य परम्परा में किसी न किसी स्तर पर सभ्य सामन्ती समाज से भिन्न उस स्वच्छन्द समाज की स्मृति है, जिसमें पुरुष-वर्चस्व के बावजूद स्त्री की भी अपनी कोई अहमियत है। यहाँ भी पुरुष-सत्ता का प्रभुत्व रहता है, लेकिन यहाँ स्त्री, अपना निर्णय लेने के लिए अपेक्षाकृत स्वतन्त्र है। तभी तो गोपियों का परपुरुष कृष्ण के प्रति प्रणय-निवेदन, लोकवर्जना की सीमाओं का अतिक्रमण होते हुए भी लोकमान्यता प्राप्त कर लेता है। निस्सन्देह, यहाँ लोक का भी विभाजन हो जाता रहा होगा। आज भी जो लोग स्वयं को समाज की सभ्य परिधि में मानते हैं, उनका 'लोक' उस लोक से भिन्न है, जो जीवन के विभिन्न कर्मक्षेत्रों में संलग्न सक्रियता से बनता है।

8.2.1 मीरा का समय और माधुर्यभाव

मीरा के समय की यह विडम्बना रही कि जिस सभ्य सामन्ती समाज में वे पैदा हुईं और उनका पालन पोषण तथा विवाह हुआ, उसकी मान्यताओं में भक्ति का वह आदर्शीकृत रूप था, जिसमें स्त्री को पुरुष-समाज की मर्यादाओं में रहना पड़ता था। यहाँ भक्ति करने के लिए कोई मनाही नहीं थी। वह राजमहल की सीमाओं और पुरुष-प्रभुत्व की मान्यताओं के भीतर रहकर पूरे वैभव व ठाठ-बाट के साथ परवान चढ़ सकती थी। किन्तु उसके यहाँ भक्तिमार्ग की बनी हुई लीक के विरुद्ध स्वच्छन्दता के लिए कोई जगह नहीं थी। वहाँ उस भक्ति मार्ग के लिए कोई स्थान नहीं था, जो एक स्त्री को पुरुष-वर्चस्व की सीमाओं के बाहर ले जाता है। मीरा यदि रामभक्ति परम्परा या किसी सामान्य निर्गुणमार्गी परम्परा

का वरण कर लेती तो शायद ही उनके भक्तिमार्ग में कोई व्यवधान या अवरोध उत्पन्न होता। मीरा का जो भी विरोध हुआ है, वह उनकी भक्ति की वजह से नहीं है, बल्कि उस भक्ति पद्धति की वजह से है जो एक स्त्री को इतना स्वच्छन्द बना देती है कि वह सामन्ती ढाँचे द्वारा जकड़बंद स्त्री-विरोधी लोक-मर्यादा को छिन्न-भिन्न करने लग जाती है। वह उस जगत को देखकर रोती है, जो उसे राजमहलों के सुख-वैभव में बाँधकर रखना चाहता है, जो उसे माणिक्य-मोतियों के आभूषण पहनाकर पुरुष-समाज की बन्दिनी बनाकर रखना चाहता है। उनका भिन्न मार्ग कुछ इस तरह है–

माणक मोती परत न पहरूँ, मैं तो कब की नटगी।
गहणों म्हारै माला दोबड़ो और चनण की कुटकी।।
राणा कुल की लाज गमाई, साधां के संग मटकी।
नित प्रत जाऊँ गुरु दरसण, नाचूं दै दै चुटकी।।

कहने की जरूरत नहीं कि मीरा की प्रेमभावना में उनकी वह विद्रोह भावना भी छिपी हुई है, जो एक सामन्ती ढाँचे और पुरुष-वर्चस्व वाले समय में एक स्त्री को अपना निर्णय करने के लिए प्रेरित करती हैं। मीरा को ऐसा अनुभव हुआ होगा कि उनको श्रीकृष्ण के प्रति अपना मार्धुयभाव व्यक्त करने के लिए जिस रास्ते पर जाना है, वह पुरुष के लिए जितना सुगम है, उतना एक स्त्री के लिए नहीं। वह स्त्री भी सामान्य नहीं है बल्कि राजसत्ता से उसका संबंध होने से वह विशिष्ट स्त्री की श्रेणी में आती है। जो जितना विशिष्ट है, सामन्ती ढाँचे में वह आचार-विचार के उतने ही असामान्य व अप्राकृतिक बंधनों में जकड़ा रहता है। कितने ही विधि-निषेध होते हैं जिनके बीच से उनको गुजरना पड़ता है। मीरा चूँकि एक विशिष्ट स्त्री है, इसलिए उनके बंधन भी उतने ही विशिष्ट हैं। उनको अपना भक्तिमार्ग, कृष्णभक्ति परम्परा में प्रस्तुत उस गोपीभाव में नजर आया, जो सारी लोकमर्यादाओं को त्यागकर श्रीकृष्ण की हो जाती है। देखा जाय तो कृष्णभक्ति का मार्ग, विशुद्ध प्रेममार्ग है। इसकी तुलना में रामभक्ति का मार्ग, भक्ति की दृष्टि से श्रद्धा तत्व की ओर ज्यादा झुका है। हम पहले कह आए हैं कि भक्ति में श्रद्धा और प्रेम का योग रहता है। लेकिन जब हम इसके व्यावहारिक रूप पर दृष्टिपात करते हैं तो मध्यकाल में व्यावहारिक तौर पर कृष्ण और राम केन्द्रित दो अलग-अलग भक्तिमार्ग दिखलाई देते हैं। इनमें भक्ति का सवाल है तो वह निष्क्रिय भाव स्तर पर भी की जा सकती है। लेकिन मीरा अपनी भक्ति में भी सामान्य नहीं है। उनका भक्तिमार्ग भी विशिष्ट है।

8.2.2 मीरा का भक्ति वैशिष्ट्य

मीरा की भक्ति पर हम इस खंड की इकाई 7 में विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। यहाँ संक्षेप में इस विषय पर चर्चा करेंगे।

इस बात में कोई सन्देह नहीं कि मीरा मूलतः एक भक्त-कवयित्री हैं, लेकिन उनकी भक्ति का गहरा रिश्ता उनके अपने समय और समाज से रहा है। वह इसलिए महत्वपूर्ण है कि उसके क्रियात्मक रूप से उनका समय और समाज आंदोलित होता है। वह उन बैठे-ठाले, व्यक्तिनिष्ठ, सकाम स्वार्थी, पाखण्डी और निष्क्रिय लोगों की भक्ति नहीं है, जिनकी भक्ति का स्वयं के आचरण और आचार-विचार से न कोई रिश्ता होता है न संगति। हमारे यहाँ करोड़ों लोग समाज-निरपेक्ष निष्क्रिय भक्ति की मुद्राओं में जकड़े रहते हैं जिसका असर न तो उनके स्वयं के आचार-विचार पर देखने में आता है, न समाज के किसी स्तर पर। मीरा का भक्ति-विवेक इस दृष्टि से भी विशिष्ट है।

उनकी भक्ति में सक्रियता है और तेजस्विता है। वह इतनी प्राणवंत और सजीव है कि आज तक भी लोगों को रास्ता दिखलाने वाली है। इस भक्तिमार्ग का व्यक्ति के आचरण

से गहरा रिश्ता है। जब तक कोई भक्त-व्यक्ति अपना आचरण नहीं बदलता, तब तक इस मार्ग पर चलना संभव नहीं है। यह वह प्रेम मार्ग है, जिसके ऊपर चलने से पहले भक्त को अपना सीस उतारकर भूमि पर धरना पड़ता है। मीरा ने ही तो किया था। मीरा के जीवन की अनेक घटनाएँ इस तथ्य की साक्षी हैं कि भक्ति के भीतर जिस प्रेममार्ग का वरण उन्होंने किया था, उस पर चलने से पूर्व उन्होंने अपना सीस उतारकर भूमि पर धर लिया था।

मीरा के सामने वह सामन्ती समाज और उसकी स्त्री-विरोधी मान्यताएँ, धारणाएँ, रूढ़ियाँ और प्रथाएँ थीं, जो किसी भी स्तर पर, चाहे वह भक्ति ही क्यों न हो, एक स्त्री को यह इजाजत देने वाली नहीं थी कि वह उनका उल्लंघन करते हुए भक्ति को एक सम्पूर्ण मानवीय सत्य की दृष्टि से पहचान कर तथा कथित लोकमर्यादा को चुनौती दें। मीरा की भक्ति की विशेषता है कि वे इस मार्ग से मानवीय सत्य के उस पक्ष तक जा पहुँचती है, जहाँ व्यक्ति की समता और स्वाधीनता जैसे जीवन मूल्य अपने आरम्भिक स्वरूप में दूर से नजर आने लगते हैं। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन का आज हमारे लिए यही महत्व है कि उसके भीतर हमको कहीं न कहीं आधुनिक समय के समता और स्वाधीनता जैसे जीवन-मूल्यों का प्रस्फुटन होता दिखाई देता है। इसीलिए मीरा की भक्ति-कविता आज हमारे लिए स्त्री-स्वाधीनता के प्रश्न की एक गंभीर पीठिका बन जाती है। उसके भीतर की यह आचारगत मूल्यनिष्ठा, उस भक्ति को एक तरह का आरम्भिक आधुनिक विवेक प्रदान करती है।

8.3 मीरा का परिवेश और माधुर्यभाव

जैसा कि बतलाया जा चुका है कि मीरा का परिवेश सामन्ती व्यवस्था वाला है, जिसमें कई तरह की ऊँच-नीच को इस तरह स्थापित कर सुदृढ़ किया गया है कि लोगों को लगने लगा कि यह सब एक स्वाभाविक दैवीय प्रक्रिया के तहत हुआ है। यहाँ मेहनत करके अपनी गुजर-बसर करने वाले व्यक्ति को नीचे दरजे का व्यक्ति माना गया है और उसके पूरे समुदाय को भी। जो लोग दूसरों की मेहनत का खाते, पहनते, ओढ़ते-बिछाते हैं, उन्हें ऊँचे दरजे का माना गया। इसी तरह श्रम-विभाजन के आधार पर स्त्री को भी पुरुष की तुलना में निचले दरजे का प्राणी कहा गया। इसी आधार पर वर्ण व्यवस्था और स्त्री-पुरुष के रिश्तों का निर्धारण हुआ, जिसमें श्रम को केन्द्र में रखकर श्रम करने वाले को नीच तथा श्रम न करने वाले परावलम्बी वर्ग को ऊँचे दरजे की प्रतिष्ठा मिली। इससे समाज में एक अन्यायकारी विषम व्यवस्था की बुनियाद पड़ी। आज तक हमारा समाज इस बुनियाद पर टिके होने का अभिशाप भोग रहा है।

इस सामन्ती परिवेश में पुरुष को विशेष अधिकार प्राप्त हुए, जिनका उपयोग करते हुए उसने अपने समुदाय और सगे-संबंधियों की स्त्रियों तक पर अनेक तरह की क्रूर एवं विभेदकारी बन्दिशें लगाईं। जबकि निम्नवर्ग के स्त्री-पुरुष के रिश्तों में, समान श्रम की स्थिति में अपेक्षाकृत ज्यादा अवकाश नजर आता है। यद्यपि पुरुष वर्चस्व एक सीमा तक वहाँ भी है, किन्तु उसके बंधन उतने क्रूर और विभेदकारी नहीं, जितने कि उच्चवर्गीय समाज में रहे हैं। यही कारण रहा होगा कि भारतीय साहित्य में प्रेमानुभूति के स्तर पर विरह-वेदना का जो गंभीर स्वरूप स्त्री जगत में नजर आता है, वैसा पुरुष जगत में नहीं। यहाँ नारी की पराधीनता का उल्लेख, जो बार-बार किया गया है, वह भी सामन्ती परिवेश में स्त्री-पुरुष के रिश्तों की विषमता का प्रमाण है। नारी को पराधीन कहकर केवल दुख और करुणाभाव प्रकट करते रहने से संबंधों की अमानवीयता और क्रूरता समाप्त नहीं होती। उससे संबंधों के सच और भावना का पता अवश्य चलता है।

मीरा की कविता में व्यक्त माधुर्यभाव भी यही व्यक्त करता है कि इस समाज के ढाँचे में वे बेसहारा हैं। उनकी यानी एक स्त्री की अन्तर्व्यथा और मनोदशा को समझने वाला यहाँ शायद ही कोई हो। इसमें पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी शामिल हो जाती हैं, जो विभेद के सच को नहीं जानतीं। सास, ननद, जिठानी, देवरानी के रूप में वे भी मीरा जैसी स्वतन्त्रचेता स्त्रियों का उत्पीड़न करती हैं और उनका समर्थन वे सभी नारियाँ करती हैं, जो सामन्ती संबंधों में पुरुष-वर्चस्व की मान्यताओं का शिकार नहीं है। मीरा की माधुर्यभावना के साथ उनकी मनोदशा का साहचर्य निरन्तर बना रहता है। इस दृष्टि से उनकी प्रेमानुभूति को ऐकान्तिक और लोकबाह्य नहीं माना जा सकता। सम्पूर्ण स्त्री समाज की संबंध-स्थिति के गहरे पीड़ा-बोध की परत उनकी प्रेमानुभति का हिस्सा है। मीरा की पीड़ा उस स्थिति में और ज्यादा घनीभूत हो जाती है, जब वह वैधव्य की स्थिति में आ जाती है। एक तो स्त्री, दूसरे राजपूत समाज की विधवा। राजपूत समाज की विधवा का मतलब है आजीवन वैधव्य व्यथा का भोग। जहाँ जीवन का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। हमें मालूम है कि आज भी विधवा स्त्री के लिए समाज के शुभ, सुखद और मांगलिक कार्यों में कोई जगह नहीं होती। शायद इस अमांगलिक और अपशकुनकारी स्थिति का प्रतिरोध करने के लिए वे श्रीकृष्ण को अपना पति मानकर उनकी भक्ति में तल्लीन होती हैं। एक तरह से यह दूसरा विवाह करना है। इस स्तर पर भी इसे सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह कहा जाना चाहिए। विवाह तो विवाह है, चाहे वह काया के स्तर पर न होकर मानसिक व वचन के स्तर पर हो। यदि मीरा केवल 'भक्ति' तक सीमित रहती तो वह उसका कोई अन्य मार्ग-माधुर्यभावना से भिन्न-भी निकाल सकती थी। सगुण, निर्गुण, नाथमत, सूफ़ी आदि मत-मतान्तरों से उनका परिचय था। वे यदि सूफियों की प्रेमपद्धति को अपनाकर चलतीं, तो उनका मार्ग उतना कष्टकारी न होता। लेकिन उनको अपने मन का ऐसा मार्ग चुनना था, जो उनकी वास्तविक दशा को रूपान्तरित व प्रभावित करने वाला हो। कदाचित, सबसे संगत और उपयुक्त भाव एवं विचार साधना उनके लिए माधुर्यभाव की उपासना में ही हो सकती थी, जहाँ लोक और अध्यात्म के द्वन्द्वों को एक नया मार्ग मिल जाता है। उनको गिरधर के रूप में वर प्राप्त हुआ है, जिसने उनकी वैधव्य स्थिति को समाप्त कर उनका भाग्य जगा दिया है। इस संबंध में उनका एक पद देखिए:

अब कोउ कैसे कहा दिल लागा।
मेरी प्रीत लगी मोहन से, सोने मिलत सुहागा।।
कोउ येक निंदों कोउ येक विन्दो, नाम सुधारस पागा।।
जन मीरा गिरधर बर पायो, भाग हमारा जागा।।

अर्थात् अब कोई कुछ भी कहे, उनका दिल तो मोहन से लग गया है। उसने उनके जीवन में सोने में सुहागे के मिलने जैसी एक नई सुखद स्थिति को पैदा कर दिया है। अब उनको इस बात की परवाह नहीं है कि इस निर्णय पर कोई उनकी निन्दा करता है या प्रशंसा निन्दा इस बात की कि उन्होंने कृष्ण से अपना दिल लगाकर और उनको अपना पति मानकर समाज-विरोधी कृत्य किया है। एक राजपूत विधवा स्त्री को ऐसा नहीं करना चाहिए। प्रशंसा इस बात की कि उन्होंने एक स्त्री के रूप में यह एक अत्यन्त साहसिक कदम उठाकर अपने लिए खतरा मोल लिया है। लेकिन स्वयं मीरा को यह दृढ़ विश्वास है कि इससे उनका भाग्य जाग गया है तथा उनको गिरधर जैसा पति मिल गया है।

8.3.1 मीरा की निजता

मध्यकालीन भक्तितंत्र में सभी कवि अपनी निजता के लिए जाने जाते हैं। भक्ति के एक बिन्दु पर जहाँ उनमें समानता नजर आती है, वहीं उसकी व्यवस्था, व्यवहार और

विचारपद्धति पर सभी अलग-अलग पंथों के पथिक बन जाते हैं। अपने समय और समाज से सम्बन्धित सवालों को वे अपनी भक्तिव्यवस्था की सीमा में उठाते हैं और उनके जवाबों की तजबीज करते दिखाई देते हैं। यह संयोग ही है कि मीरा अपनी भक्तिभावना का निर्धारण अपनी निजी जरूरतों की पूर्ति के लिए करती है। वे स्थापित भक्ति-तंत्र से बाहर निकलने का साहस दिखलाती हैं। कबीर अपनी भक्तिपद्धति के बीच से सामाजिक वैषम्य से सम्बन्धित सवालों को उठाते हैं। भक्ति की पहली शर्त है सबकी समानता। लेकिन भारतीय समाज, अपनी सामाजिक व्यवस्था में ऊँच-नीच और छुआछूत की भावना में इतना ग्रसित रहा है कि एक सच्चे भक्त के लिए ये बातें परेशानी की सबब बनती रही है। हमारे यहाँ की प्रचलित वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण और शूद्र, ऊँच-नीच के दो ध्रुवों पर स्थित रहे हैं। इसके साथ ही धर्म और अध्यात्म के क्षेत्रों में अनेक तरह के ढोंग, पाखण्ड और अंधविश्वासों को लोगों के दिमागों में इतना ठूँस-ठूँसकर भर दिया गया कि वे उसी को धर्म, भक्ति और अध्यात्म कहकर समाज की सहज गति को अवरुद्ध करने लगे। कबीर की भक्ति-व्यवस्था का महत्व आज हमारे लिए इसी वजह से है कि उसके माध्यम से भक्ति का एक व्यापक एवं जीवनसम्बद्ध स्वरूप अभिव्यक्त होता है। जिस भक्ति को आमतौर पर व्यक्त समय और जीवन से दूर एवं अलग-थलग करके प्रस्तुत किया जाता रहा है, उसको भक्तिकाल के कवियों ने जीवनसम्बद्ध किया। कबीर ने तो एक कदम आगे बढ़कर एक जरूरी काम किया कि उससे भारतीय समाज-हिन्दू और मुसलमान - के अन्तर्विरोध सामने आए। मीरा की भक्ति की निजता भी इस बात में है कि उन्होंने अपने निजी जीवन की कठिनाइयों तथा पुरुषवर्चस्व की पितृसत्तात्मक क्रूरताओं का प्रतिरोध करते हुए एक स्त्री की स्वाधीनता को अभिव्यक्त किया। मीरा को अपना विद्रोह का रास्ता शायद उन गोपियों से मिला, जो ब्रजराज श्रीकृष्ण के प्रति अपनी भक्ति में अनुरक्ति को पहले सोपान पर रखती हैं। मीरा के यहाँ भी, भक्ति के श्रद्धा और प्रेम तत्वों में, सर्वाधिक बल प्रेम पर दिया गया है। यही सच्चा प्रेम है जो उनको विद्रोही बनाता है तथा उसकी हर कीमत चुकाने को तैयार करता है।

8.4 मीरा के प्रेमालम्बन

मीरा के काव्य में उनके प्रेम-सम्बोधन के प्रमुख रूप 'गिरधरनागर' के साथ 'जोगी' और 'रमैया' का प्रयोग भी हुआ है। इससे विद्वानों में इस सवाल पर बहस चल निकली कि मीरा का माधुर्यभाव किसके प्रति व्यक्त हुआ है, और इसी आधार पर कोई उनको नाथ संप्रदाय की ओर घसीटने लगा तो कोई संत मत की ओर। जब कि असलियत यह है कि उनकी माधुर्यभावना का मुख्य आलम्बन वे श्रीकृष्ण रहे हैं, जिनके सिर पर मोर मुकुट होने की बात लोक में मान्य रही है। मीरा के लिए वे माखन चोर हैं। वे तिरछा मुकुट पहनते हैं। उनके गले में मोतियों की माता सुशोभित रहती है। वे मन्द और मधुर स्वर में मुरली बजाते हैं। ऐसे स्वरूप की प्रेम दीवानी है मीरा। इस स्वरूप ने उनसे पहले गोपियों को सम्मोहित किया था। इतना अवश्य है कि मीरा के कृष्ण तत्कालीन कृष्णभक्ति सम्प्रदायों के कृष्णरूपों से समानता रखते हुए भी अपने भिन्न स्वरूप का निर्माण करते हैं और इस प्रक्रिया में उनका स्वरूप सर्वसमावेशी हो जाता है। हम इस तथ्य से परिचित हैं कि मीरा के समय में भक्ति-विधान को व्यक्त करने वाले अनेक भक्ति-सम्प्रदायों का प्रचलन हो गया था। चूँकि वे श्रीकृष्ण को अपना आराध्य और प्रेमालम्बन मानती थीं, इसलिए बल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णवों ने उनको अपने सम्प्रदाय में लाने का प्रयत्न भी किया था। चैतन्य महाप्रभु के गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रमुख विचारदृष्टा जीवगोस्वामी से हुई उनकी भेंट का उल्लेख भी कृष्ण संबंधी साहित्य-चर्चाओं में मिलता है। इसके बावजूद वे इन सबसे दूर रहीं। किसी बँधी-बँधायी भक्ति पद्धति में रमने के लिए मीरा का मन नहीं बना

था। यदि वे बंधन को ही स्वीकार कर लेतीं तो अपने राजप्रासादों में कोई बड़ा और भव्य कृष्णभक्ति-सदन बनवाकर अपनी भावतृप्ति कर सकती थीं। रूढ़ और पुरुषतंत्र की सीमाओं में बँधी भक्ति के लिए उनको पूरी जगह थी। लेकिन मीरा अपने स्वच्छन्द भाव से भक्ति में संलग्न होना चाहती थीं। यह उनकी स्वच्छन्द भावना ही है, जो उनको सभी तरह के बंधनों को छिन्न-भिन्न कर देने की शक्ति प्रदान करती है। भक्ति के भीतर प्रेम और माधुर्यभावना का एक स्वच्छ प्रवाह मीरा के यहाँ मिलता है। वे स्वच्छन्द भक्ति की ऐसी कवयित्री हैं जहाँ मन की मौज का खेल ही उसकी पद्धति बन गया है। वह पूरे भक्ति साहित्य में अपने तरह की अनूठी और निराली हैं। उसे किसी तरह के शास्त्रीय विधान के चश्मे से देखना, उसके मर्म की अनदेखी करना है।

8.4.1 गिरधरनागर

जैसा कि बतलाया जा चुका है कि मीरा की माधुर्यभावना के प्रमुख आलम्बन गिरधरनागर रहे हैं, जिन्होंने उनके भाग्य को जगाया है–

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारा जागा रें।।

ऐसे गिरधरनागर के प्रति पूर्ण समर्पण करके वे निश्चिंत और निष्क्रिय हो जाती हैं – 'दास मीरा लाल गिरधर, होनी हो सो होई।' इसी भाव ने मीरा को संसार में व्याप्त उन बुराइयों के प्रति तटस्थ बना दिया, जो उसकी स्वाधीनता का अपहरण करती है। मीरा की संलग्नता उस सत्य के प्रति है, जो व्यक्ति को स्वार्थबद्ध संकुचित सीमाओं से बाहर निकाल कर उसे जगत से सम्बद्ध करता है अन्यथा वे सबसे तटस्थ होकर कहने लगती हैं –

कछु लेना न देना मगन रहना।
नांहि किसी की कानां सुणनी, नाहिं किसी कू (अपनी) कहना।।
गहरी नदिया नाव पुरानी, खेवटिये सूं मिलता रहना।।
मीरा के प्रभु गिरधरनागर, साँवरिया चरणां–चित देना।।

दरअसल मीरा जिस रास्ते पर चल रही थी, उसका समर्थन करते हुए उस समय शायद ही कोई हो, जो उसकी सुनने वाला हो। ऐसे समय में एक सार्थक जीवन जीने वाला व्यक्ति 'एकला चलो रे' की नीति अपनाता है। मीरा भी ऐसा ही करती हैं। उनकी माधुर्यभावना को, रूढ़िबद्ध और स्वाधीनता विरोधी संस्कारों वाला समाज यह कैसे स्वीकार करता कि मीरा अपनी भक्ति-भावना को व्यक्त करने के लिए स्वच्छन्द पथ का अनुसरण करें। मीरा के माधुर्यभाव पर तत्कालीन समाज का अंकुश इतना निर्मम एवं क्रूर रहा होगा कि वे अवसर मिलते ही लोकलाज को खो देने की चर्चा करने लगती है। समझने की बात यह है कि मीरा ने अपनी व्यथा और विद्रोहभावना को मात्र दो-चार पदों में व्यक्त नहीं किया है। अगर इस तरह के पदों की गिनती की जाए तो उनकी संख्या पचासों में बैठेगी। सत्य को कहने में यहाँ कोई झिझक, डर और प्रमाद नहीं है। उनका एक पद है–

काहू की मैं बरजी नाहिं रहूँ।
जो कोइ मोकू एक कहै, मैं एक की लाख कहूँ।।

मीरा चुप रहने वाली स्त्री नहीं थी, जो चुप रहकर सब कुछ सहन करती रहे। वे एक की लाख कहने वाली हैं। जो लोग मीरा की भक्ति और माधुर्यभावना के इस पक्ष की अनदेखी करते हैं, वे मीरा की कविता और भक्ति के पूर्ण सौन्दर्य तक शायद ही पहुँच पाएँ यहाँ पर यह भी जान लेना चाहिए कि मीरा की एक की लाख कहने वाली आदत के पीछे उनकी उस प्रेमानुभूति का बल है, जो एक महान आदर्श और उद्देश्य के प्रति

समर्पणभावना से प्राप्त होती है। उन्होंने एक पद में यह माना भी है –

प्रीत को पैंड़ों बहुत कठिन हैं, चार कही दस और कहो रे।
मीरां के प्रभु गिरधरनागर, प्रीत करो तो मेरा बोल सहो रे।।

मीरा ने प्रेम के निराले पंथ पर चलने का केवल संकल्प ही नहीं किया बल्कि उस पंथ पर दृढ़तापूर्वक चलकर भी दिखलाया। इसी से उनका भक्तिपथ भी अन्य भक्त कवियों से अनूठा एवं विलक्षण है। दूसरे भक्त कवियों के पथ बने बनाए थे, मीरा को प्रेमानुभूति का आलम्बन लेकर अपना पथ स्वयं बनाना पड़ा और उसके लिए उन्होंने अपने प्राणों तक को दाँव पर लगाया। यद्यपि इस तरह का खतरा अन्य भक्तों ने भी मोल लिया, तथापि मीरा का खतरा इनमें सबसे बड़ा है, जिसमें सहजता के साथ पुरुषसत्ता का विरोध उनके खतरे को कई गुना बड़ा बना देता है। यह मीरा की अत्यन्त उत्कट एवं उदात्त कोटि की प्रेमभावना ही है, जो न केवल उनको साहस देती है वरन् संसार की उपेक्षा एवं अवज्ञा-अपमान सहन करने की शक्ति भी। वे अपने मन की बात अपने प्रिय गिरधर को इन शब्दों में कहती है –

गिरधर दुनिया दे छै बोल।
गिरधर मेरो मैं गिरधर की, कहो ताक बजाऊँ ढोल।।

यह दुनिया वही है, जो बँधे-बँधाए रास्ते और लीकों पर चलने वाली है। रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर चलने वाली ऐसी दुनिया मीरा सरीखी स्वच्छन्दचेत्ता स्त्री की बातों के मर्म को कैसे जान सकती है। ऐसी दुनिया से ही मीरा मानों बार-बार कहती है –

1) गिरधर म्हारा परम सनेही, मीरा उनकी नार।

2) गिरधर म्हारा सांचा पति छै, मैं गिरधर की दासी हे माय।

3) गिरधर म्हारे मन भाया, मोरी माय, राणूं जी म्हारे दाय न आवे।।

4) मीरा कहे प्रभु गिरधरनागर, प्रेमपियारा मीत।।

8.4.2 जोगी और रमैया

मीरा की काव्यभाषा एवं रूपकों में गिरधरनागर के बाद उनके अन्य प्रेमालम्बन हैं जोगी और रमैया। गिरधर, गोविंद और गोपाल की तरह उन्होंने अपने प्रेमालम्बन के अनेक पदों में कृष्ण को 'जोगी' कहकर संबोधित किया है। इससे साहित्य-जगत में इस सीमा तक विभ्रम फैला कि उनको नाथपंथी घोषित किया जाने लगा। कुछ विद्वानों ने तो इस जोगी को मीरा के व्यक्तिप्रेमी होने तक की दूर की कौड़ी लाने की कोशिश अपनी 'मौलिकता' दिखाने के लिए कर डाली। उन्होंने मीरा के स्वच्छंद व्यक्तित्व की उस विद्रोहभावना, उदात्तता साहस, शौर्य और दृढ़ता की नज़रअंदाज कर दिया, जो मीरा को एक ऐसा भक्त बनाते हैं, जो भक्तिपद्धति की शास्त्रबद्ध रूढ़ सीमाओं का अतिक्रमण कर अपना मार्ग स्वयं बनाती है। मीरा की विशेषता यह है कि वे अपने समय के साथ चलती हुई दिखकर भी, उससे अलग हटकर चलती है। वह सबको देखती है किन्तु किसी एक से बँधकर नहीं चलती। उन्होंने अपने समय के किसी एक सम्प्रदाय की शिक्षा एवं विधि-विधान से बँधना स्वीकार नहीं किया। कहीं न कहीं उनको आभास हुआ होगा कि किसी एक सम्प्रदाय की शिक्षाओं और भक्तिविधान की सीमाओं में बँधने का मतलब है कि पुरुष की उसी चिन्तन-सत्ता का अंकुश मानना, जिसके विरुद्ध वे राजमहलों के सुख को त्यागकर आई हैं। वस्तुतः मीरा की प्रेमभावना का रिश्ता, उनकी उस स्वच्छन्दभावना से है, जो किसी बँधी-बँधाई लीक पर नहीं चलती।

मीरा के जोगी का उद्‌भव उनकी विरह-भावना के प्रसंग में हुआ है। जोगी का महत्व है वैरागी। अर्थात् जो राग से मुक्त है वही है जोगी। जो प्रेम करके अपनी प्रेयसी को विरह में तड़पता छोड़ गया है। गिरधरनागर भी ऐसे ही जोगी तो हैं जो मीरा सरीखी प्रेयसी को अपने विरह में तड़पती छोड़ गए हैं। जोगी के स्वभाव के बारे में मीरा ने अपने एक पद में लिखा है –

जाबा दे री जाबा दे, जोगी किसका मीत।
सदा उदासी मोरी सजनी, निपट अटपटी रीत।।
बोलत बचन मधुर से मीठे, जोरत नाहीं प्रीत।।
हूँ जाणूं या पार निभैगी, छोड़ चला अधबीच।।
मीरां कहे प्रभु गिरधरनागर, प्रेमपियारा मीत।।

कहने का मतलब यह है कि मीरा को अपने समय की प्रचलित भक्ति पद्धतियों में न पूरी आस्था थी और न ही उनसे परहेज। वे अपने न्यारे प्रेमपंथ पर स्वच्छन्द भावना के अनुसार चल रही थी, अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए सगुणभाव के साथ निर्गुण भावों, सूफ़ी सरोकारों और नाथ सम्प्रदाय के रूपकों को अपनाने तक से उनको कोई परहेज नहीं था। इसी सन्दर्भ में उनकी काव्यभाषा में 'जोगी' एवं 'रमैया' जैसे सम्बोधन शामिल हुए हैं।

8.5 मीरा की सौन्दर्य–सृष्टि

प्रेमभावना का संबंध सौन्दर्य से होता है। पहली बार प्रिय अपने प्रेमी या प्रेमी अपने प्रिय के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर ही प्रेमभावना के बंधन में बँधता है। प्रेमी के रूप, स्वभाव, सरलता, साहस, शौर्य आदि गुणों के प्रति आकर्षित होकर प्रिय उसके बंधन में बँधता है। ऐसा लौकिक स्तर पर सामान्य रूप में भी होता है और उदात्त रूप में भी। जब वह उदात्त रूप में होता है तो निजी सीमाओं का अतिक्रमण कर पूरे देश और दुनिया को अपनी भावसरिता में डुबो लेता है। भक्त कवियों की प्रेमभावना में जो दूसरों को डुबो लेने की क्षमता है, उसकी वजह, उसकी उदात्तता, व्यापकता और लोकसम्बद्धता में है। प्रेम यदि उदात्त स्तर का है तो वह ऐकान्तिक नहीं हो सकता। वह लोकबद्ध ही होगा। यह अलग बात है कि उसकी लोकबद्धता का ओर-छोर जीवन के सभी क्षेत्रों में न हो।

मीरा की प्रेमभावना में उदात्तता और व्यापकता का जो वैशिष्ट्य आया है, उसके पीछे उनके प्रिय के विलक्षण सौन्दर्य की मुख्य ताकत रही है। उनकी प्रेमभावना के आलम्बन हैं श्रीकृष्ण, जो मीरा के यहाँ गिरधर रूप में हैं – गिरधर अर्थात् गोवर्द्धन पर्वत को ब्रजवासियों के हित में अपनी उँगली पर उठाने वाले तथा इन्द्र जैसे अहंकारी का मान-मर्दन करने वाले। ऐसे गिरधरनागर ही मीरा के प्रभु है। काव्य में हर शब्द की अपनी अर्थसत्ता और उस अर्थ के पीछे छिपा सौंदर्य होता है। मीरा स्वयं कष्ट में रही है। यदि उन्होंने कृष्ण के गिरधर रूप को अपना आराध्य बनाया, तो इसकी सौन्दर्य-व्यंजना हमको दूर तक ले जाती है। ऐसे ही ब्रजरक्षक गिरधारी श्रीकृष्ण के सौन्दर्य पर मीरा दीवानी होती है। प्रमाणस्वरूप एक पद लीजिये–

अब नहिं जाने दूं गिरधारी,
(मोहे) प्रीत लगी अति भारी।
बाँको मुकुट काछनी सुन्दर, ऊपर जरद किनारी।।
गल मुतियन की माल बिराजै, कुण्डल की छवि न्यारी।।
बाँकी भौं, कजरारे नैना, अलकैं छुट रहीं कारी।

मंद मंद मुरली धुन बाजत, मोही ब्रज की नारी।।
छुद्र घंटिका कटि कर सौहे, भुज पर बाजू धारी।
कड़ा मरहटी सुधर नेवरी, नुपुर की झुंणकारी।।
दुरजन लोग हँसो क्यों ना मोसों, दे देकर करतारी।।
मीरा प्रभु की भई दिवानी, प्रेम मगन मतवारी।

यहाँ प्रेमालम्बन का जो सौन्दर्य-विधान किया गया है, उसमें गिरधारी के बाहरी रूप के आकर्षण के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व की विलक्षणता एवं उनका मुरली का संगीत है। कृष्ण हमारे यहाँ सबसे ज्यादा कला-प्रवीण नायक हैं। पूरे साहित्य में एकमात्र कलाप्रवीण नायक वे ही माने गए है। शूरवीरता, धैर्य, त्याग की भावना, कष्टसहिष्णुता, परदुखकातरता आदि गुण तो अन्य सभी अवतारों एवं महानायकों में मिलते हैं, किन्तु संगीत आदि कलाओं में जो कौशल श्रीकृष्ण को प्राप्त है, वह कदाचित और किसी को नहीं। उनके कलाकार का यह रूप खासतौर से ब्रज की गोपियों को सम्मोहित किए रहता है। इसे सौन्दर्य का आन्तरिक गुण कहा गया है। कृष्ण की सबसे बड़ी विशेषता है उनके व्यक्तित्व की साधारणता और सहज-सुलभता। वे ब्रज की गलियों में घूमते हुए कोई संकोच नहीं बरतते–

आवत मोरी गलियन में गिरधारी,
मैं तो छुप गई लाज की मारी।।

वे ब्रज की गलियों में होली खेलते हैं, नृत्य करते हैं। काली कमरिया ओढ़कर यमुना के किनारे धेनु चराते हैं और विपत्ति पड़ने पर ब्रज को उबारते भी हैं। इस तरह के सौन्दर्य रूपाकारों ने मीरा की प्रेमभावना को न केवल साहस और निडरता से सम्पृक्त किया है, वरन् इतना उदात्त बना दिया है कि वह अपने समय का अतिक्रमण करके आज के आधुनिक मनुष्य को भी प्रभावित करता है। सच्ची प्रेमभावना की यही विशेषता होती है कि वह किसी एक युग और समय की सीमा में नहीं बँधती। वह युगों-युगों तक अपना काम करती है। मीरा की प्रेमभावना तो इस मामले में ज्यादा प्रासंगिक है कि उसके साथ समाज के जरूरी सवाल-जैसे लिंग भेद और स्त्री स्वाधीनता-उठे बिना नहीं रहते। वे जिस प्रक्रिया को अपनी भक्ति-साधना में अपनाकर चलती हैं, वह भारतीय समाज में मान्य नहीं रही है। अतः मीरा को अपनी भक्ति और प्रेमभावना को व्यक्त करने के लिए समाज की भेदभावपूर्ण रूढ़ियों और बंधनों को तोड़ना और छोड़ना पड़ता है। अपनी प्रेमभावना की शक्ति से उनको सफलता भी मिलती है। इस तरह मीरा हमारे समाज की लीकबद्ध सौंदर्याभिरुचि को तोड़ती हुई नवीन सौंदर्यभावना का पथ प्रशस्त करती हैं।

8.6 मीरा की प्रेमभावना के विविध आयाम

उपर्युक्त विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि मीरा की भक्ति पद्धति में प्रेमभावना का मुख्य स्थान है। वैसे तो जहाँ भक्ति होगी, वहाँ प्रेमभाव होगा ही, तथापि मीरा की भक्ति का सारा बल प्रेमभावना पर ही रहा है। उनके प्रेमभाव और प्रेमानुभूति की सहजता इस बात में है कि उनको पुरुष-भक्त की तरह स्त्री का कृत्रिम रूप धारण नहीं करना पड़ता। ये स्वयं स्त्री हैं और उनके अनुसार इस संसार में एकमात्र पुरुषसत्ता श्रीकृष्ण की है। कहा जा सकता है कि फिर मीरा पुरुषसत्ता की विरोधी कैसे हुई? प्रकारान्तर से श्रीकृष्ण की पुरुषसत्ता मीरा की भावनाओं में भी कायम हो गई है। उनके यहाँ भी ईश्वर, ब्रह्म या प्रेम का स्वरूप 'पुरुष' का ही है। किन्तु यहाँ समझने की बात यह है कि आधुनिक स्त्री-मुक्ति-संबंधी आन्दोलनों की भाँति मीरा के भावजगत में पुरुष की सत्ता का अंधविरोध नहीं है। वे उस पुरुष वर्चस्व का विरोध करती हैं, जो स्त्री को अपने समान स्वाधीनता

नहीं देता। जो स्त्री को अपनी भोग्या से ज्यादा नहीं मानता। ईश्वर के साथ रिश्तों में ऐसा नहीं है। वहाँ साधुओं की संगति करने की आजादी ही नहीं है वरन् स्वच्छन्द भाव से नाचने-गाने तक की आजादी है। इस रूप में मीरा अपने दबाए हुए स्त्रीत्व को न केवल अभिव्यक्त करती है वरन् उसकी रचनात्मक संभावनाओं को भी उजागर करती है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि यदि इस संसार में व्यक्ति को पूरी स्वाधीनता मिल जाय तो विश्वस्तर पर रचनात्मक संभावनाओं का घनत्व तेजी से बढ़ जाएगा।

8.6.1 प्रेमभावना और स्वच्छन्दता

जैसा कि पूर्व में कई सन्दर्भों में उल्लेख किया जा चुका है कि मीरा की प्रेमभावना में जो विद्रोह दिखाई देता है, वह उनके स्वच्छन्द व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। हरेक व्यक्ति जन्म से ही अपने समय और समाज के रूढ़िबद्ध संस्कारों की छाया में स्वयं को घिरा हुआ पाता है। कम ही लोग होते हैं, या कहें अपवाद ही होते हैं, जो इन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह कर अपना विकल्प खुद तैयार करते हैं। यद्यपि ऐसे व्यक्ति भी होते हैं, जो मनुष्यता के लिए नई संभावनाओं के द्वार खोलते हैं। मीरा अपने समय में इसी तरह के अपवाद व्यक्तियों की श्रेणी में आती है। वे जिस तरह समाज की बनी बनाई लीक पर चलने और उसे मानने के प्रति न केवल अपना अवज्ञा भाव प्रदर्शित करती है वरन् व्यवहार में उसका उल्लंघन करके भी दिखलाती है। इसके लिए उनको अपयश, अपकीर्ति और सामाजिक लांछन का भागीदार होना पड़ता है, साथ ही उनके जीवन पर भी संकट उपस्थित हो जाता है। हमें आज यह पूरी तरह मालूम नहीं है कि पुरुषवर्चस्व वाले सामन्ती समाज में उनको कितनी तरह की यातनाओं से गुजरना पड़ा होगा। विष का प्याला, पिटारी में साँप आदि भेजने संबंधी रचनात्मक उल्लेख इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं। यह अलग बात है कि उनके हितैषी भी रहे होंगे, जिन्होंने इन दुर्घटनाओं से बचाने में उनकी मदद की होगी। बहरहाल, मीरा की अन्तर्निहित स्वच्छन्द भावना ने, उनकी भक्ति के उस रसीले पथ पर चलने का साहस दिया, जो काल-व्याल से बचाने वाला है। देखने की बात यह है कि मीरा ने यहाँ जगत की क्रियाओं के आस्वाद को 'खारा' कहा है और अपनी प्रेमाभक्ति के मार्ग को 'रसीला'। उनका एक प्रसिद्ध पद है–

मैं तो साँवरे के रंग राची।
साजि सिंगार, बाँधि पग घुँघरू, लोकलाज तजि नाची।
गई कुमत लई साध की संगत, भगतरूप भई साँची।।
गाइ गाइ हरि के गुन निसिदिन, कालव्याल सों बांची।।
उण बिन सब जग खारो लागत, और बात सब काची।
मीरां श्री गिरिधरन लाल सूं, भगत रसीली जाँची।।

इस पद की विशेषता है कि इसमें मीरा के भक्ति संबंधी विचार और उनका स्वयं का जीवन-व्यवहार दोनों इस तरह द्वन्द्वात्मक रूप से घुलमिल गए हैं कि यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि यह मीरा की अपनी आत्मकथा, आस्था और वैचारिक दृढ़ता है या सामान्य भक्तिमार्ग। यदि यह सामान्य भक्ति मार्ग होता, तो 'साजि सिंगार बाँध पग घुँघरू' के साथ "लोकलाज तजि नाची" जैसा स्वच्छन्द कथन नहीं होता। देखने की बात यह है कि यहाँ साँवरे के प्रति जैसी उत्कृष्ट प्रेमभावना व्यक्त हुई है, उससे ज्यादा अपने समय और समाज की रूढ़ियों को तोड़ने के प्रति स्वच्छन्दता का भाव। एक राजसी विधवा की शृंगार सज्जा और नृत्य करते हुए हरिगुण गाना – अपने समय में स्त्री की स्वाधीनता की घोषणा करने से कम नहीं है।

8.6.2 प्रेमभावना का शास्त्रीय पक्ष

भक्तिभावना पर केन्द्रित रहकर मीरा की भक्ति का विवेचन करने वाले विद्वानों ने उनकी भक्तिभावना को शास्त्रीय दृष्टि से समझने की कोशिश की है। जिसका परिणाम यह हुआ कि मीरा की भक्तिभावना का क्रान्तिकारी पक्ष उद्घाटित होने से बचा रह गया। साहित्य में प्रेमभावना की अभिव्यक्ति उसके उद्भवकाल से हो रही है। कालान्तर में उस भावाभिव्यक्ति को ही एक शास्त्रीय रूप प्रदान कर दिया गया। किन्तु जो अनन्त संभावनाओं वाला रचनाकार होता है, वह सबसे पहले शास्त्रबद्ध रूढ़ियों पर प्रहार करता है। मीरा की कविता भी इसी तरह की शास्त्रीयता के विरोध से शुरू होती है। यदि उनको भक्ति की साम्प्रदायिक शास्त्रीयता का बंधन स्वीकार्य होता तो वे किसी न किसी भक्ति-सम्प्रदाय के अन्तर्गत दीक्षा ग्रहण कर लेतीं। मीरा एक विद्रोहिणी कवियित्री हैं, वह जितना विरोध सामाजिक बंधनों का करती हैं, उतना ही शास्त्रीय रूढ़ियों का भी। फिर भी विद्वानों ने मीरा की प्रेमानुभूति को शास्त्रीय दृष्टि से – पूर्वराग, विरह और मिलन के रूपों में विभाजित करके देखा है। मीरा की उपासना पद्धति के क्रम में यह बतलाया गया है कि साधन-भेद के आधार पर किए गए भक्ति के भेदों – अपरा और परा – में मीरा की भक्ति को परा की श्रेणी में माना जा सकता है। गौड़ीय सम्प्रदाय के विचारक रूप गोस्वामी के अनुसार मीरा की भक्ति 'उत्तम' की कोटि में आती है – इसी के अन्तर्गत उनको 'प्रेमाभक्ति' में स्थान दिया गया है। लेकिन यह तथ्य बहुत स्पष्ट है कि मीरा ने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति किसी शास्त्रीय आधार पर नहीं की थी। उन्होंने निजी संस्कारों, जरूरतों और अनुभव के अनुरूप भाव के पारम्परिक रूपों के बीच अपना प्रेममार्ग स्वयं आविष्कृत एवं निर्मित किया था।

8.6.3 प्रेमभावना और जीवन-मूल्य

प्रेमभावना, यदि सच्ची है तो वह निष्काम होगी। वह अपने प्रिय से मिलन और तादात्म्य के अलावा और कुछ नहीं चाहती। भक्ति या प्रेम के अन्तर्गत जब याचना और मनोकामनापूर्ति की आकांक्षा का योग हो जाता है तो उसमें स्वार्थबुद्धि की विकृतियाँ आ जाती हैं। यही वजह है कि रीतिकालीन कवियों द्वारा व्यक्त भक्ति संबंधी भावों को भक्तिकालीन कविता के समान दर्जा नहीं दिया जाता। जब भक्ति में सच्ची प्रेमभावना होती है तो भक्त का सम्पूर्ण जीवन-व्यवहार बदल जाता है। वह अपना ही नहीं, सबका हो जाता है। वहाँ समाज, जाति, क्षेत्र, प्रभुता, ऐश्वर्य आदि के सारे भेद समाप्त हो जाते हैं। वह पूरी तरह स्वाधीन हो जाता है और सभी के साथ समता का व्यवहार करता है। मीरा की भक्ति और प्रेमभावना के जीवन-मूल्यों की स्थिति इसी कोटि की है। इसी से उनकी भावभूमि पर जीवनमूल्यों का सृजन हुआ है।

मीरा की प्रेमभावना की विशेषता है कि वह अपने लिए स्वयं रास्ता बनाती है। उसे समाज द्वारा निर्धारित मान्यताओं का उल्लंघन करने में कोई भय नहीं होता। परम्परागत मूल्यों में यदि मनुष्यता के तर्क के लिए स्थान नहीं है तो मीरा उसे तोड़ने में झिझकती नहीं। जो स्थापित है, उसे वह केवल इसी वजह से स्वीकार नहीं करती कि वह स्थापित है। हमारे समाज में अनेक मान्यताएँ ऐसी रही हैं जो किसी वर्ग, समुदाय या समूह विशेष के प्रभुत्व की स्थापना के प्रयोजन से प्रचलित हैं। मीरा की प्रेमभावना इसकी परवाह व चिन्ता नहीं करती। उसी की ताकत उन्हें निडर और साहसी बना देती है। उनकी प्रेमभावना में विलास के लिए भी कोई स्थान नहीं है। सारी रूप-सज्जा और शृंगारिकता के बावजूद यहाँ सामन्ती वर्ग की रीतिकालीन कविता जैसी शारीरिक स्तर की दाम्पत्य भावना नहीं है। यहाँ अनुभूति की सच्चाई का एक हँसता-खेलता भरा पूरा संसार है। जैसे सूर की कविता में प्रेमानुभूति के विविध स्तर और जीवन की व्यापकता की दीप्ति है, वैसी तो मीरा के काव्य जगत में नहीं है किन्तु दाम्पत्य एवं माधुर्यभावना के जितने रागात्मक स्तर संभव हैं, वे मीरा के यहाँ विद्यमान हैं। वे उद्धव सरीखे ज्ञान-गुरुता सम्पन्न व्यक्ति की प्रेम

शून्यता तथा रूखेपन पर सूर की तरह कोई करारा व्यंग्य नहीं करती किन्तु इतना अवश्य है कि वे अपने समय के समाज और उसकी भावशून्य मान्यताओं का स्वयं उल्लंघन करके दिखलाती हैं। इस वजह से जहाँ सूर सरीखे महाकवियों की प्रेमानुभूति की स्थिति केवल वैचारिक स्तर तक सीमित होकर रह जाती है, वहाँ मीरा की प्रेमानुभूति जीवन के यथार्थ को उद्घाटित करते हुए उससे एक कदम आगे निकल जाती है। वह 'प्रेमानुभूति' के बारे में जितना कहती है, उतना करके भी दिखलाती हैं। इस कारण पूरे भक्तिकाल में उनका काव्य अपने तरह का एक अलग ही उदाहरण है, जिसमें रचनाकार का स्वयं का जीवन भी शामिल है। प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति और काव्य सृजन के लिए सीधे-सीधे उनको अपना जीवन दाँव पर लगाना पड़ा है। उन्होंने 'मठ' और 'गढ़ों' को तोड़ने के लिए अभिव्यक्ति का खतरा उठाया है।

चाहे जैसे भी हुआ हो, मीरा अपनी प्रेमभावना को व्यक्त करने की प्रक्रिया में सबसे पहले उस 'सत्य' को खोजती है, जो उन्हें भक्ति के स्थापित सिद्धान्त-सूत्रों में मिलने वाला नहीं था। उसके लिए जरूरी था कि व्यक्ति अपने स्तर पर उसको आविष्कृत करे। सिद्धान्त के स्तर पर हमारे यहाँ भक्ति के प्रांगण में समानता के उदाहरण व्यवहार स्तर पर बहुत कम मिलते हैं। कबीर और मीरा की कविता इसके सबसे बड़े प्रमाण है। कबीर को भक्तितंत्र में ब्राह्मणवादी वर्चस्व के विरुद्ध आवाज उठानी पड़ी और मीरा को पुरुष की सामन्ती सत्ता के विरुद्ध। कदाचित इसी वजह से महात्मा गाँधी ने मीरा को भारत की पहली सत्याग्रही माना।

अपनी प्रेमानुभूति के लिए सर्वस्व त्याग करते हुए दृढ़ता, संतोष और धैर्य आदि जीवन मूल्यों की जो भावसरिता मीरा की कविता में प्रवाहित मिलती है, वह अन्यत्र बहुत कम दिखाई पड़ती है। साध्य को अपने जीवन के साधन से सिद्ध करने के उदाहरण पूरे इतिहास में बहुत कम हैं। मीरा का एक लम्बा पद है, जिसमें उनको उनकी माता, पिता, भाई, जोशी (पंडित), राणा आदि सभी समझाते हैं:–

जोसी जी मनावै मीरां थे मानो, पतड़ा री पण राख
भक्ति छोड़ो जी हरिनाम की।
थे घर जावों जोसी जी आपणे, पत राखैलो दीनानाथ
भक्ति न छूटै हरिनाम की।।
पिताजी मनावै मीरां थे मानो, पगड़ी री पत राख
भक्ति छोड़ो हरिनाम की।।
बैठो राण्यां रे मांय, महलां रे मांय, भक्ति छोड़ो जी सालिगराम की।।
थे घर जावो बाबल आपने, पत राखैलो दीनानाथ
भक्ति न छूटै हरिनाम की।।

इस क्रम में इसी तरह से मीरा की माता, भाई व मेवाड़ के राणाजी भी उनको मनाते हैं, और रानियों तथा महलों के बीच में रहने तथा सुख भोगने की सलाह देते हैं लेकिन मीरा सभी को एक ही जबाव देती है कि उनकी रक्षा करने वाला दीनानाथ है, इस पर अटल विश्वास है। अतः वे भक्ति के जिस मार्ग पर चल पड़ी हैं, उसको छोड़ने वाली नहीं हैं। राणाजी उनसे कहते हैं कि उनके इस तरह के आचरण से उनका अपना कुल, पूरा राठौड़ वंश, मेड़ता तथा चित्तौड़ की कीर्ति को बट्टा लग रहा है। किन्तु इस संदर्भ में मीरा प्रत्युतर देती है, कि उनका काम तो अपने कुल, राठौड़ वंश व चित्तौड़-मेड़ता का उद्धार करने वाला है। उसके काम से दुनिया में इनका नाम अमर हो जाएगा। हम देखते हैं कि इतिहास में मीरा के विद्रोही संस्कारों और प्रेममार्ग ने इन सभी को यशस्वी बनाया। इससे मीरा की चारित्रिक दृढ़ता और प्रेमानुभूति की अनन्यता उजागर होती है।

शून्यता तथा रूखेपन पर सूर की तरह कोई करारा व्यंग्य नहीं करती किन्तु इतना अवश्य है कि वे अपने समय के समाज और उसकी भावशून्य मान्यताओं का स्वयं उल्लंघन करके दिखलाती हैं। इस वजह से जहाँ सूर सरीखे महाकवियों की प्रेमानुभूति की स्थिति केवल वैचारिक स्तर तक सीमित होकर रह जाती है, वहाँ मीरा की प्रेमानुभूति जीवन के यथार्थ को उद्घाटित करते हुए उससे एक कदम आगे निकल जाती है। वह 'प्रेमानुभूति' के बारे में जितना कहती है, उतना करके भी दिखलाती हैं। इस कारण पूरे भक्तिकाल में उनका काव्य अपने तरह का एक अलग ही उदाहरण है, जिसमें रचनाकार का स्वयं का जीवन भी शामिल है। प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति और काव्य सृजन के लिए सीधे-सीधे उनको अपना जीवन दाँव पर लगाना पड़ा है। उन्होंने 'मठ' और 'गढ़ों' को तोड़ने के लिए अभिव्यक्ति का खतरा उठाया है।

चाहे जैसे भी हुआ हो, मीरा अपनी प्रेमभावना को व्यक्त करने की प्रक्रिया में सबसे पहले उस 'सत्य' को खोजती है, जो उन्हें भक्ति के स्थापित सिद्धान्त-सूत्रों में मिलने वाला नहीं था। उसके लिए जरूरी था कि व्यक्ति अपने स्तर पर उसको आविष्कृत करे। सिद्धान्त के स्तर पर हमारे यहाँ भक्ति के प्रांगण में समानता के उदाहरण व्यवहार स्तर पर बहुत कम मिलते हैं। कबीर और मीरा की कविता इसके सबसे बड़े प्रमाण है। कबीर को भक्तितंत्र में ब्राह्मणवादी वर्चस्व के विरुद्ध आवाज उठानी पड़ी और मीरा को पुरुष की सामन्ती सत्ता के विरुद्ध। कदाचित इसी वजह से महात्मा गाँधी ने मीरा को भारत की पहली सत्याग्रही माना।

अपनी प्रेमानुभूति के लिए सर्वस्व त्याग करते हुए दृढ़ता, संतोष और धैर्य आदि जीवन मूल्यों की जो भावसरिता मीरा की कविता में प्रवाहित मिलती है, वह अन्यत्र बहुत कम दिखाई पड़ती है। साध्य को अपने जीवन के साधन से सिद्ध करने के उदाहरण पूरे इतिहास में बहुत कम हैं। मीरा का एक लम्बा पद है, जिसमें उनको उनकी माता, पिता, भाई, जोशी (पंडित), राणा आदि सभी समझाते हैं:–

जोसी जी मनावै मीरां थे मानो, पतड़ा री पण राख
भक्ति छोड़ो जी हरिनाम की।
थे घर जावों जोसी जी आपणे, पत राखैलो दीनानाथ
भक्ति न छूटै हरिनाम की।।
पिताजी मनावै मीरां थे मानो, पगड़ी री पत राख
भक्ति छोड़ो हरिनाम की।।
बैठो राण्यां रे मांय, महलां रे मांय, भक्ति छोड़ो जी सालिगराम की।।
थे घर जावो बाबल आपने, पत राखैलो दीनानाथ
भक्ति न छूटै हरिनाम की।।

इस क्रम में इसी तरह से मीरा की माता, भाई व मेवाड़ के राणाजी भी उनको मनाते हैं, और रानियों तथा महलों के बीच में रहने तथा सुख भोगने की सलाह देते हैं लेकिन मीरा सभी को एक ही जबाव देती है कि उनकी रक्षा करने वाला दीनानाथ है, इस पर अटल विश्वास है। अतः वे भक्ति के जिस मार्ग पर चल पड़ी हैं, उसको छोड़ने वाली नहीं हैं। राणाजी उनसे कहते हैं कि उनके इस तरह के आचरण से उनका अपना कुल, पूरा राठौड़ वंश, मेड़ता तथा चित्तौड़ की कीर्ति को बट्टा लग रहा है। किन्तु इस संदर्भ में मीरा प्रत्युतर देती है, कि उनका काम तो अपने कुल, राठौड़ वंश व चित्तौड़-मेड़ता का उद्धार करने वाला है। उसके काम से दुनिया में इनका नाम अमर हो जाएगा। हम देखते हैं कि इतिहास में मीरा के विद्रोही संस्कारों और प्रेममार्ग ने इन सभी को यशस्वी बनाया। इससे मीरा की चारित्रिक दृढ़ता और प्रेमानुभूति की अनन्यता उजागर होती है।

8.7 कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा और मीरा की प्रेमभावना

मीरा की प्रेमभावनाओं का कृष्णभक्ति काव्य परम्परा से गहरा रिश्ता रहा है। हम जानते हैं कि हिन्दी में इस काव्य परम्परा के सबसे बड़े रचनाकार सूरदास हैं। उनकी भक्ति एवं प्रेमभावना का स्वरूप सखाभाव का है। मीरा ने यद्यपि पुरुष-वर्चस्व का विरोध करते हुए 'भक्ति' को समता के स्तर तक पहुँचाया, तथापि वहाँ भी दाम्पत्य भाव में पुरुष की सत्ता बनी रही। इसकी वजह ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा और इनके स्वरूप श्रीकृष्ण का, पुरुष स्वरूप होना भी है। चूँकि इन धारणाओं को बनाने में पुरुष समुदाय अग्रणी रहा या उसकी प्रभुता रही, तो इससे पुरुष की सत्ता को आध्यात्मिक स्तर पर डिगा पाना आज तक संभव नहीं हुआ है। अन्यथा दाम्पत्य भाव भी स्त्री-पुरुष के बीच का सखाभाव ही है। लेकिन दीर्घकालीन सामन्ती व्यवस्था में रहते हुए दाम्पत्य में स्त्री की तुलना में पुरुष की सत्ता का उपरिहस्त (अपरहैंड) रहा। विचारकों ने इसकी व्याख्या मीरा को प्रकृति और कृष्ण को पुरुष मानकर की है। मीरा भी ब्रज में अकेले कृष्ण को पुरुष मानती हैं, अन्य सभी को स्त्री यानी प्रकृति।

कृष्णकाव्य परम्परा में श्रीकृष्ण का अलौकिक सौन्दर्य, उनके भक्तों व प्रेमियों के प्रेमाकर्षण का प्रेरक तत्व रहा है। सूर काव्य में कृष्ण का सौन्दर्य ही उनके प्रेमभावना की मुख्य शक्ति बना है। कृष्ण के रूप में भी सौन्दर्य है और उनके कार्यों में भी। किशोरावस्था में आने पर जब वे ब्रज में माखनचोरी करने लगते हैं तो अपने इस कार्य के साथ गोपियों का चित्त हरण भी करते हैं। इस तरह उनकी प्रेम-भावना का विकास धीरे-धीरे होता है। उनके प्रेमरंग का इतना गहरा होने का कारण उसका परिस्थितिगत विकास है। उसमें रूप-लोभ की आकस्मिकता उतनी नहीं है, जितनी साहचर्यगत सहज आकर्षण की भावना। मीरा के यहाँ चूँकि गोपीभाव कीं सम्पूर्ण परिस्थितियाँ नहीं हैं, अतः उनके यहाँ प्रेम के विरहभाव को मुख्य स्थान प्राप्त हुआ है। सूर की प्रेमभावना का विकास ब्रज लोकजीवन की सम्पूर्ण परिस्थितियों में हुआ है, जब कि मीरा की प्रेमभावना का विकास उनकी निजी परिस्थितियों के बीच विरहाभिव्यक्ति के रूप में ज्यादा हुआ है। यही वजह है कि वहाँ कृष्ण रूपाकर्षण के स्वतंत्र पद भी हैं और मिलीजुली भावनाओं के पद भी, जिनमें सब कुछ एक साथ है। नेत्रों के माध्यम से कृष्ण की माधुरी मूरत का चित्त में चढ़ जाने के बाद उनका जो हाल हुआ, उसे इस पद में देखा जा सकता है–

नैणां मोरे बाण पड़ी, सांई मोहि दरस दिखाई।
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी।।
कैसे प्राण पिया बिन राखूँ, जीवण मूर जड़ी।।
कबकी ठाड़ी पंथ निहारूँ, अपणे भवन खड़ी।।
मीरा प्रभु के हाथ बिकानी, लोग कहें बिगड़ी।।

यहाँ देखने की बात यह है कि कृष्ण के प्रति अपनी प्रेमभावना को व्यक्त करते हुए मीरा को यह अहसास भी बना रहता है कि इसकी वजह से 'लोगों में उनको बिगड़ी हुई' बतलाया जा रहा है। इन निजी जीवन-संदर्भों के कारण मीरा की प्रेमानुभूति की प्रामाणिकता व चमक दोनों बढ़ जाती है। एक अन्य पद की दो पंक्तियाँ देखिए, जिनमें वे अपने आराध्य को 'रूप-सुरंगा' कहती है। ऐसा करके मीरा अपनी प्रेमभावना को व्यापकता प्रदान करती है। उनकी भावनात्मक उदारता भी इससे परिलक्षित होती हैं। वे कहती हैं–

रूप सुरंगा राम जी, मुख निरखत कीजे।
मीरां व्याकुल बिरहणी, हरि अपनी कर लीजे।।

कृष्णकाव्य परम्परा में व्यक्त गोपीभाव की अवस्थिति मीरा की प्रेमभावना में भी मौजूद है। नाभादास के प्रसिद्ध छप्पय में इसे 'सदृश गोपिका प्रेम' कहा गया है। किन्तु यहाँ देखने की बात यह है कि गोपियों की प्रेम-विवशता में एक तरह का संकोच बना रहता है। वहाँ मीरा की तरह ढोल-बजंता दाम्पत्य भाव नहीं है। सूर की गोपियों के मन में एक तरह की झिझक, आशंका और लोकलाज का आंशिक भय सदैव बना रहता है। इसीलिए गोपियों को मीरा की तरह कभी 'लोग कहें बिगड़ी' का लांछन नहीं सहना पड़ा। इसका कारण कदाचित यह है कि गोपीभाव का सृजन सूर ने उनसे दूर रहकर किया है। सूर ने जैसा गोपियों को बनाया, वे उसी तरह की बनीं। जबकि मीरा ने स्वयं को बनाया है। वहाँ दाम्पत्यभाव की सामूहिक स्थिति है जबकि मीरा के यहाँ इसके ठीक विपरीत, विशेषीकरण हुआ है। उनकी पीड़ा, उनका दर्द व्यक्तिगत है। तीसरे, यदि वह राधा और कृष्ण के बीच का माधुर्यभाव है तो वहाँ प्रेमी और प्रेमिका के बीच बराबरी की स्थिति है। इसलिए वहाँ कभी-कभार ही सही, श्रीकृष्ण भी ब्रज और गोपियों की याद कर लेते हैं, परन्तु मीरा और श्रीकृष्ण के यहाँ विरहणी का यथार्थ अकेली मीरा को प्रभावित करता है। कहा जा सकता है कि मीरा के माधुर्यभाव में जितनी आध्यात्मिकता और रहस्यपरकता है, उतनी ही सांसारिकता भी। इस संसार की संबंधशीलता, मीरा की प्रेमभावना को एक वास्तविक रूपाकार प्रदान करती हुई संसार के रिश्ते को नया रूप देती है। यही वजह है कि मीरा इस संसार में स्त्री-पुरुषों के रिश्ते को लेकर सवाल खड़े करती हैं। वे मिथक को वास्तविकता में रूपान्तरित करती हैं। उन्होंने स्वयं कहा भी है–

हे री मैं तो दरद दिवानी, मेरा दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोणा होय।।
गगन मंडल में सेज पिया की, किस विध मिलणा होय।।
घायल की गत घायल जाने, के जिन घायल होय।
जौहर की गत जौहरी जाने, के जिन जौहर होय।।
दरद की मारी बन बन ढूंढूं, बैद मिल्यौ नहि कोय।
मीरा के प्रभु पीर मिटेगी, बैद साँवलिया होय।।

8.8 सारांश

मीरा की भक्ति का मुख्य आधार है उनकी प्रेमभावना। प्रेमभावना उनके यहाँ भक्ति का पर्याय बन गई है। इस भावना की अभिव्यक्ति में जहाँ उनके चरित्र की उदात्तता, उदारता, तन्मयता, दृढ़ता और स्वच्छन्दता उजागर हुई है, वहीं सच्चाई, प्रामाणिकता और मन की निर्मलता भी। दूसरे कवियों ने भक्ति को भावात्मक एवं वैचारिक स्तर पर आविष्कृत किया था, जब कि मीरा ने अपने जीवन की जरूरतों के क्रम में। इसलिए मीरा की आवाज में सम्पूर्ण स्त्री-समाज की आवाज का समावेश हो गया है। मीरा ने मध्यकालीन सामन्ती परिस्थितियों में जो साहस दिखलाया था, वैसा साहस दिखला पाना आज भी स्त्री-समाज के लिए संभव नहीं हो पाया है। यद्यपि आज आधुनिक समय है और लोकतांत्रिक परिवेश है।

मीरा की प्रेमभावना का निर्धारण बहुत कुछ उनकी अपनी परिस्थितियों, जरूरतों एवं निर्णय के फलस्वरूप हुआ है। भक्तिभावना का एक प्रारंभिक आधार उनको बचपन से ही मिला था, जो उनके विवाह एवं वैधव्य के बाद भक्ति में प्रेम की परिपक्व अवस्था तक पहुँचा। अपने प्रेमभाव को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने कृष्णभक्ति का मार्ग चुना, जिसमें उनके दाम्पत्यभाव को एक उदात्त भावात्मक स्वरूप प्रदान करने में आसानी रही। उनकी प्रेमभावना में जीवन के प्रति उनकी दृष्टि, स्वच्छन्दता से प्रेरित रही है। इसलिए वे उन सामाजिक रूढियों व बंधनों की अवज्ञा करते हुए सत्य के लिए आग्रह करती हैं, जो स्त्री

के लिए अन्याय की हद तक बंधनकारी रहे हैं। मीरा के जीवन की भौतिक परिस्थितियों में विरह-भाव की अभिव्यक्ति के लिए पूरा अवकाश मिला। वैधव्य ने उनको चिरकालीन विरह की परिस्थितियाँ दीं, जिसे उन्होंने उदात्तता के उच्च स्तर पर भक्ति रूप में पर्यवसित करते हुए आत्मा और परमात्मा के माधुर्यपूर्ण रिश्ते में परिवर्तित कर लिया। इससे उनकी विरहभावना में व्यापकता एवं गहराई दोनों का समावेश हुआ।

इस तरह हम देखते हैं कि मीरा ने अपने काव्य सृजन के माध्यम से कविता को एक नई सौन्दर्य दृष्टि से आवेष्टित किया। भक्ति और प्रेमभावना के एक सामान्य मार्ग पर चलते हुए भी उन्होंने उसको निजी वैशिष्ट्य तथा मूल्यभावना से सम्पन्न किया।

8.9 अभ्यास प्रश्न

1. मध्ययुगीन प्रेमभावना के स्वरूप को समझाते हुए बताइए कि मीरा की माधुर्यभावना से विद्रोह का कैसा रिश्ता है?
2. मध्यकालीन भक्ति भावना में मीरा के भक्ति-वैशिष्ट्य एवं उनकी निजता का निरूपण कीजिए।
3. मीरा के सामाजिक परिवेश में उनकी माधुर्यभावना को स्पष्ट कीजिए।
4. मीरा के प्रेमालम्बन और उनकी प्रेमभावना के सौन्दर्य को समझाइए।
5. मीरा की प्रेमभावना के विविध आयामों पर प्रकाश डालिए।
6. कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा में मीरा की प्रेमभावना के वैशिष्ट्य को समझाइए।

इकाई 9 मध्यकालीन भारतीय भक्त कवयित्रियाँ और मीरा

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 मध्यकालीन भारतीय भक्त कवयित्रियाँ

- 9.3.1 आंदाल
- 9.3.2 अक्क महादेवी
- 9.3.3 मुक्ताबाई
- 9.3.4 जनाबाई
- 9.3.5 बहिणाबाई
- 9.3.6 ललद्यद

9.4 सारांश

9.5 अभ्यास प्रश्न

9.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई प्रमुख मध्यकालीन भारतीय कवयित्रियों पर आधारित है। मीरा के जीवन और उनकी कविता के महत्व को ठीक से जानने और समझने के लिए मीरा के अलावा अन्य मध्यकालीन भारतीय भक्त कवयित्रियों के जीवन और उनकी कविता पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। इसी बिन्दु को ध्यान में रखकर इस इकाई में मध्यकालीन प्रमुख भक्त कवयित्रियों के जीवन और उनके काव्य की जानकारी दी गई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- मध्यकालीन भारतीय भक्त कवयित्रियों का जीवन परिचय दें सकेंगे;
- मध्यकालीन भारतीय भक्त कवयित्रियों के साहित्य की जानकारी दे सकेंगे;
- मध्यकालीन भक्त कवयित्रियों की कविता की विशेषताओं को उद्घटित कर सकेंगे; और
- मध्यकालीन भक्त कवयित्रियों के साहित्य के परिप्रेक्ष्य में मीरा का महत्व स्थापित कर सकेंगे।

9.2 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय साहित्य के लंबे इतिहास में कवि के रूप में स्त्रियों की आवाज विरल ही है। वैदिक ऋचाओं और थेरी गाथाओं में जहाँ-तहाँ स्त्रियों की आवाज सुनाई पड़ती है जिससे उनकी आत्माभिव्यक्ति के प्रयास की जानकारी मिलती है। बाद में भी संस्कृत,

पाली, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में भी स्त्री की रचनाशीलता के कम ही प्रमाण मिलते हैं। इससे भारतीय समाज में स्त्री की सामाजिक सांस्कृतिक स्वाधीनता के अभाव का पता चलता है।

भारतीय साहित्य के इतिहास में भक्ति आंदोलन के साथ पहली बार कविता के क्षेत्र में सशक्त स्त्री स्वर सुनाई पड़ता है। भक्ति आंदोलन अखिल भारतीय आंदोलन था, वह विभिन्न क्षेत्रों की मातृभाषाओं में रचनाशीलता के उत्थान का भी आंदोलन था और भारतीय समाज में युगों से पराधीन समुदायों में आत्माभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के जागरण का आंदोलन था, इसलिए प्रत्येक क्षेत्र की मातृभाषाओं में पहली बार बड़ी संख्या में स्त्रियों की आत्माभिव्यक्ति के रूप में काव्य रचना का विकास दिखाई देता है। इस काल में भारत की प्रत्येक भाषा में अनेक महत्वपूर्ण कवयित्रियाँ पैदा हुईं, जिनमें से कुछ ने अपनी भाषा की नई परंपरा के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और साथ ही स्त्री रचनाशीलता के विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया। हिंदी में ऐसी ही कवयित्री है मीराबाई। हिंदी में मीरा का वही स्थान है जो तमिल में आंदाल का, कन्नड़ में अक्क महादेवी का, कश्मीरी में ललद्यद का और मराठी में मुक्ताबाई, जनाबाई और बहिणाबाई का।

9.3 मध्यकालीन भारतीय भक्त कवयित्रियाँ

मीरा के जीवन और उनके काव्य के अखिल भारतीय महत्व को ठीक से समझने के लिए अन्य भारतीय भक्त कवयित्रियों के जीवन और काव्य को सामने रखकर देखना जरूरी है। मीरा को अपने जीवन और काव्य-रचना के दौरान अनेक विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, क्या वैसी ही विषम परिस्थितियों से अन्य भारतीय भक्त कवयित्रियों को भी लड़ना पड़ा। मीरा और भारतीय भक्त कवयित्रियों के बारे में चर्चा आरंभ करते हुए हमें उनके कालक्रम और युग को भी ध्यान में रखना चाहिए। भारतीय भक्त कवयित्रियों में कुछ ऐसी हैं जो मीरा की पूर्ववर्ती हैं और कुछ ऐसी हैं जो मीरा के बाद की हैं। भारतीय भक्त कवयित्रियों के बारे में अब तक के प्राप्त इतिहास में सबसे पुरानी हैं – तमिल की आंदाल। इसलिए हम उन्हीं के जीवन और काव्य से इस चर्चा की शुरूआत करेंगे।

9.3.1 आंदाल

भक्ति-भावना और काव्य रचना की दृष्टि से मीरा के सबसे निकट आलावार तमिल भक्त कवयित्री आंदाल दिखाई देती हैं। आंदाल दक्षिण भारत के तमिलनाडु की प्रमुख आलवार वैष्णव भक्त कवयित्री थीं। आठवीं शताब्दी की इस भक्त कवयित्री के बारे में यह कहा जाता है कि ये आलवार भक्तों में प्रमुख श्री विष्णुचित्त स्वामी की पालित पुत्री थीं। मदुरै जिले के विल्लपुत्तुर ग्राम निवासी श्री विष्णुचित्त, जिन्हें पेरि आलावार भी कहा जाता है, को भगवान के लिए पुष्प चुनते समय अपनी पुष्पवाटिका में तुलसी के पौधे के निकट एक अलौकिक कन्या प्राप्त हुई। इसी कारण उसका नाम 'कोदई' (पुष्पों की माला की भाँति कोमल और कमनीय) रखा गया।

बाल्यावस्था से ही आंदाल के मन में भगवत्प्रेम की दिव्य तरंगें उठने लगी थीं। वह पिता द्वारा पूजन के लिए माला तैयार करके प्रभु को अर्पण किए जाने से पूर्व ही अपने गले में धारण करके दर्पण में देखती और जाँचती कि यह भगवान के गले में कैसी लगेगी। एक दिन ऐसा करते हुए पिताजी ने उन्हें देख लिया और कोदई को ऐसा न करने के लिए समझाया-बुझाया। किंतु जब उन्हें जान पड़ा कि भगवान को आंदाल की पहनी या उच्छिष्ट माला ही प्रिय है तो उन्होंने उसे अनुमति प्रदान कर दी। कोदई के कोमल हृदय

पर इस घटना का बहुत प्रभाव पड़ा। उनमें भगवान के प्रति अलौकिक प्रेम का संचार हो गया। वह तबसे लगातार अपने को श्रीकृष्ण मिलन की भूखी किसी गोपी का अवतार समझने लगी। विवाह योग्य होने पर उसने किसी भी पुरुष से विवाह करने से स्पष्ट मना कर दिया और कहा कि मैं श्री रंगम को छोड़कर किसी से विवाह नहीं कर सकती। कोदई के 16 वर्ष की होने पर विष्णुचित्त उसे श्री रंगम ले जाकर वैवाहिक विधियों के साथ श्री रंगनाथ प्रभु को समर्पित कर आए। ऐसा कहा जाता है कि वह मूर्ति के निकट पहुँचकर उससे मिलते ही अंतर्ध्यान हो गई। उसी दिन से पेरियालावार ने उसे आंदाल नाम से पुकारा। आंदाल का अर्थ होता है शासन करने वाली या स्वामिनी। आज कोदई, आंदाल नाम से प्रसिद्ध है। उनका एक नाम श्रीगोदा भी है। गोदा का अर्थ है अपनी वाणी को भगवान के प्रति समर्पित करने वाली। आंदाल के रचे दो ग्रंथ आज मिलते हैं **तिरुप्पावै** और **नेच्चियार तिरुमोलि** (गोदा की श्री सूक्तियाँ)। तमिल भाषा में रचित **तिरुप्पावै** अत्यंत लोकप्रिय रचना है। इसमें विभिन्न राग-रागनियों में निबद्ध तीस गाथाएँ हैं। तिरुप्पावै अर्थात् भगवान से संश्लेष का पर्व। कुछ विद्वान इसे एक ही लंबी कविता के तीस अंश मानते हैं तो कुछ विद्वान प्रत्येक गाथा को स्वतंत्र।

भगवान कृष्ण के प्रति एकांतिक समर्पण और तीव्र रागात्मक तन्मयता से ओत-प्रोत **तिरुप्पावै** के गीतों की झंकार आज भी दक्षिण भारत के मंदिरों में सुनाई पड़ती है, जैसा कि उत्तर भारत के मंदिरों में मीरा के गीतों का संगीत मुखरित होता है।

कृष्ण के प्रति आंदाल की भक्ति भी मीरा की तरह स्वकीय भाव की है। उन्होंने श्री रंगम के साथ अपने विधिवत् विवाह का वर्णन किया है, उसी तरह जैसे मीरा ने दीनानाथ के साथ सम्पन्न स्वप्न विवाह का। श्रीकृष्ण के दर्शनों का जो आनंद आंदाल के काव्य में मिलता है वैसा मीरा के यहाँ भी है। विरहदशा के वर्णन में भी हम दोनों कवयित्रियों में साम्य देख सकते हैं। मीरा की तरह ही आंदाल के काव्य में लोक जीवन की शब्दावली और लोकजीवन का संगीत सुनाई पड़ता है। संभवतः इसी कारण आज आंदाल को दक्षिण भारत की मीरा कहा जाता है। विल्लपुत्तुर में आंदाल की मूर्ति स्थापित है। आंदाल सहित सभी आलवार भक्त कवियों ने गेय पदों की रचना की है जो विभिन्न राग-रागनियों में निबद्ध है। भारत के संपूर्ण भक्ति काव्य की यह जानी-मानी विशेषता है कि उसमें कविता और संगीत की अद्‌भुत एकता मिलती है इसीलिए वह लोकप्रिय है। आज भी उत्तर भारत और दक्षिण भारत के शास्त्रीय संगीत और लोकसंगीत के गायक भक्त कवियों के पदों को गाते हैं।

आंदाल की रचना **तिरुप्पावै** की मूल भावना बहुत गहरी है। भागवत में गोपिकाओं के एक व्रत का वर्णन है। संभवतः आंदाल को उसी से प्रेरणा मिली। उसका अपना जीवन गोपिकाओं से मिलता-जुलता था। उसका एक मात्र उद्‌देश्य अपने प्रियतम कृष्ण की आराधना द्वारा उन्हें प्रसन्न करना था। तिरुप्पावै के अधिकांश पद प्रभाती या 'जागरण गीत' के समान हैं। उन पदों में कुछ सखियों द्वारा अपनी अन्य सखियों एवं कृष्ण और नंद, गोप आदि को जगाने का वर्णन है। इस प्रकार तिरुप्पावै के पदों में आत्म चेतना को जगाने का भाव भी है। अहंकार की नींद से जागकर मनुष्य यदि भगवान के गुणों का अनुभव करे तो व्रत पूर्ण हो जाए।

गोपी भाव की भक्ति के कारण ही आंदाल ने अपने गाँव को ही गोकुल माना और वहाँ की स्त्रियों को गोपियाँ। उन्हीं गोपियों में से उन्होंने अपने को एक गोपी मान लिया। वे श्री वटपत्रशायी के विशाल मंदिर को नंद महल और उसमें सोने वाले भगवान

को श्रीकृष्ण समझकर अत्यंत उत्कट भाव से गोपियों का अनुकरण करती रहीं। वे अपने प्रभु को नारायण, हरि, दामोदर, केशव, गोविंद, वासुदेव, शंख चक्रधारी, वटपत्रशायी आदि संबोधनों से संबोधित करती हैं। आंदाल की इस भक्ति और उसके ग्रंथ **तिरुप्पावै** को अद्‌भुत मानते हुए विनोबा जी ने ठीक ही लिखा है: "साधारणतया देखने में आता है कि ईश्वर दर्शन के समय भक्त औरों की तो क्या कहें, खुद को भी भूल जाता है। उसकी समाधि ही लग जाती है। परंतु इस काव्य में यह लड़की सबसे भगवद् दर्शन के लिए व्रत लेने को कह रही है। इस काव्य में जो समूह भावना है वह भक्ति, तपस्या और ईश्वर दर्शन इन तीनों में प्रकट हो रही है। अकेले कुछ करना ही नहीं है, जो भी कुछ करना है समूह को साथ लेकर करना है।"

मार्गशीर्ष वैष्णव मास माना जाता है। इस मास में गोपियों को अपने प्रभु कृष्ण से मिलने का अवसर मिला था। आंदाल कहती हैं: मार्गशीर्ष का महीना है। अहो चन्द्र से परिपूर्ण ऐसा शुभ दिन, मंगल बेला है। स्नान की इच्छा (कृष्ण से मिलने की) रखने वाली सखियों! आगे आओ, मैं पीछे से साथ चलती हूँ। अनुरूप आभरणों से भूषितै, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति प्रपत्ति से संपन्नै! भगवान की गुण संपति को भी उफान देने वाले गोकुल की गोप बालाओ। कंस के दूतों से रक्षा करने के लिए तीक्ष्ण वेलायुध से क्रूर कर्म करने को भी तत्पर जो कोमल हृदय वाले नंद गोप हैं, उनके कुमार तथा सौंदर्य भरे नेत्रों वाली यशोदा के सिंह शावक (पिता के समीप विनीत और माता के निकट उद्धत रहने वाले) श्यामल मूर्ति, लाल नेत्रों वाले, सूर्य के समान तेजोमय और चन्द्र के समान आह्लादकारी अन्यादृश्य सुंदर मुखमंडल वाले नारायण हम अनन्य भक्तों को खंजरी आदि व्रत सामग्री, साधन देने और हमारे अभीष्ट पूरा करने ही वाले। हम सब ऐसी निष्ठा से यह व्रत करें कि समस्त भूवासियों द्वारा इसकी प्रशंसा की जाए। अरे, सुनो! यह हमारा व्रत है।

आंदाल गोपी भाव से श्रीकृष्ण जी से प्रेम करती हैं इसलिए प्रेममग्न स्त्री की विभिन्न मनोदशाओं की अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में है। वे कभी संयोग के गीत गाती हैं तो कभी विरह के। एक 'पाशुर' (छंद) में वे कृष्ण से मिलन की आकांक्षा इस तरह व्यक्त करती हैं:

क्या तुम कमल नयनों को
नहीं खोलोगे
जो सूर्य और चन्द्रमा की तरह हैं
और क्या हमारी ओर नहीं देखोगे
ताकि हमारे सारे अभिशाप मिट जाएँ।

आंदाल को अपने आस-पास के संसार की भी चिंता है जो उनकी कविता में व्यक्त होती है :

एक महीने में तीन बार वर्षा होगी
पूरी पृथ्वी पर और कोई अभिशाप नहीं होगा
धान के पौधे सिर उठाए झूमेंगे
मछलियाँ खुशी से नाचेंगी
चमकती मधुमक्खियाँ खिले फूलों पर सोएँगी
और स्वस्थ गाये अनंत दूध देंगी
ओ! कुमारियों ओ सखियों।

आंदाल एक काव्यांश में कृष्ण के रूप और रस की आकांक्षा करती हुई संयोग की कामना व्यक्त करती हैं। वे उस शंख से पूछती हैं जिसे श्रीकृष्ण बजाते हैं:

क्या वे कपूर की तरह
सुगंधित हैं या कमल की तरह खिले हुए
क्या वे मधुर हैं
श्रीकृष्ण के प्रवाल जैसे अधरोष्ठ!
ओ समुद्र के वासी शंख मुझे बताओ
मैं बेचैनी से यह जानने के लिए कि
उनका स्वाद कैसा है
उस माधव के होठों की
सुगंधि कैसी है
जिसने गजदंत तोड़े थे।

उनकी विरह दशा की अभिव्यक्ति करने वाला एक छंद इस प्रकार है :

मैं व्यर्थ ही
अपने उस काले केशव की
प्रतीक्षा करती रही
वह स्त्रियों का दुख नहीं जानता
मैं मधुर वचनों की प्रतीक्षा करती रही
पर तुमने मेरे घावों पर
तेजाब ड़ाल दिया
ओ सखियों ! वह पीतांबर लाओ
जो मेरा प्रिय अपनी कमर में
लपेटता है
उससे मुझे हवा दो
और मेरे जलते हृदय को ठंडक पहुँचाओ
मैं काले बैल द्वारा रौंदी गई धरती की तरह
कुचली हुई और टूटी हुई हूँ
यह उसी का काम है जो अपरपड़ि की कुमारियों का
दिल चुराता है
अब मुझे किस बात से सांत्वना मिलेगी
स्वामी के उन अधरों के अमृत से
जिससे मैं कभी तृप्त नहीं होती
वह अमृत लाओ
ताकि मैं उसका स्वाद ले सकूँ
वही मेरा दुख दूर करेगा
मैं बेचैन हूँ
पर मुझे यह चिंता नहीं है कि
जिऊँगी कि मरूँगी
अगर मैं उस चोर गोवर्धनधारी को देखूँगी
तो मैं अपने वक्षों को जड़ से उखाड़ कर
उसकी छाती पर रख दूँगी
तभी मुझे विरह के नरक की आग से
मुक्ति मिलेगी।

आंदाल केवल आत्मविस्मृति की मनोदशा में ही नहीं रहती बल्कि वे एक कवि के रूप में आत्मसजग भी हैं और तमिल की महान काव्य परंपरा में अपना स्थान जानती हैं, इसीलिए उन्होंने एक कविता में लिखा है:

मैं कोदई संत पेरि आलावार की पुत्री हूँ
संगम तमिल में यह गीत गा रही हूँ
तीस फूलों की यह माला भेंट चढ़ा रही हूँ
ओ सखियों! ओ कुमारियों!
जो इस गीत को चतुर्मुखी, सुमुख लाल नेत्रों
वाले दीप्तिमान ईश्वर की प्रार्थना में
निर्दोष रूप से गाएँगे
उन्हें असीम आनंद मिलेगा।

आंदाल की रचनाएँ काव्य कौशल, संगीतप्रियता और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से बेजोड़ हैं। स्त्री भक्त कवयित्रियों में विशेषकर कृष्ण भक्त कवयित्रियों में सबसे वरिष्ठतम इस भक्त कवयित्री का काव्य संसार अपूर्व है। यहाँ यह भी कहना जरूरी है कि आंदाल के जीवन में परिस्थितियों की अनुकूलता दिखाई देती है जबकि मीरा को सदा संघर्ष का सामना ही करना पड़ा। सामंती समाज की रूढ़ियों के विरुद्ध जैसा निर्भय चुनौती का स्वर मीरा के काव्य में है वह आंदाल के यहाँ नहीं है। मीरा का काव्य और जीवन आज भी इसी स्वाधीनता के संघर्ष के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

9.3.2 अक्क महादेवी

कन्नड़ भक्ति साहित्य में वीर शैव आंदोलन से जुड़े अनेक भक्त कवियों के नाम लिए जाते हैं। अक्क महादेवी इस आंदोलन से जुड़ी एक प्रमुख कवयित्री थी। कन्नड़ में अक्क का अर्थ बहिन होता है। इस आंदोलन से जुड़े लगभग सभी लोग अक्क महादेवी को बड़ी बहिन की तरह मानते थे। वे बसवेश्वर या बसवन्ना और अल्लामा प्रभु की समकालीन थीं। अक्क महादेवी का जन्म सन् 1150 में कर्नाटक के शिवमोग्गा जिले के उडुतरि गाँव में एक पिछड़े परिवार में हुआ था। वे अपने माँ-बाप की इकलौती संतान थीं। अक्क महादेवी उसी तरह शिव को अपना पति मानती थीं जैसे प्रेम योगिनी मीरा कृष्ण को। उन्होंने सांसारिक पुरुष के बदले चन्न मल्लिकार्जुन (शिव) को अपना पति चुना। बचपन से ही उनका मन चन्न मल्लिकार्जुन पर रीझ गया था। शिव पूजा ही उनका खेल थी।

अक्क महादेवी अपूर्व सुंदरी थी। कहा जाता है एक बार उस नगर का राजा कौशिक, शिकार से लौट रहा था, द्वार पर खड़ी इस अपूर्व सुंदरी को देखकर उस पर रीझ गया। उसने अक्क से प्रेम प्रस्ताव रखा, परंतु अक्क महादेवी ने यह कहकर कि उसका विवाह भगवान मल्लिकार्जुन से हो चुका है, विवाह करने से साफ इनकार कर दिया। परंतु राजा और अपने माता-पिता का खयाल करके अक्क महादेवी ने सशर्त राजा कौशिक से विवाह करना स्वीकार कर लिया। लेकिन राजा ने उन शर्तों का पालन नहीं किया। अक्क महादेवी ने विवाह संस्था के विरुद्ध विद्रोह किया और राजसी ठाठ-बाट छोड़कर वे राजमहल से बाहर आ गईं और अपने प्रभु चन्न मल्लिकार्जुन की खोज में निकल पड़ीं। अक्क ने केवल राजमहल ही नहीं छोड़ा वहाँ से निकलते समय अपने वस्त्रों को भी उतार फेंका। यह पुरुष वर्चस्व के विरुद्ध आक्रोश की अभिव्यक्ति थी अक्क की। विवाह के बंधन को तोड़कर बाहर निकलने के बाद उनको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। एक वचन में उन्होंने स्वयं अपना पीछा करने वाले लोगों की ओर संकेत करते हुए कहा है:

मैं जब चट्टान में समाई
तब तुम भी पीछे पीछे आए
मैं जब पहाड़ों पर गई
तुम लगातार मेरा पीछा करते रहे
जूही की तरह श्वेत मेरे ईश्वर
मैं और क्या करूँ।

अपनी लंबी यात्रा के बाद वे कल्याण पहुँचीं, जो वीर शैव आंदोलन का केंद्र था। कहा जाता है कि उनके और अल्लामा प्रभु के बीच लंबा संवाद हुआ। कुछ दिन वहाँ रहने के बाद वे अपने प्रभु की खोज में श्री शैल गईं और वहाँ के कदली वन में चन्न मल्लिकार्जुन में विलीन हो गईं। अक्क महादेवी ने बसवन्ना और अल्लामा प्रभु की भाँति वचनों की रचना की है। वे वचन न छंद के बंधन में बँधे और न लय के, इसलिए उन्हें काव्यात्मक गद्य या छंदमुक्त कविता कहा जा सकता है। उनके करीब चार सौ वचन मिले हैं। **वचन**, **योगांग** और **सृष्टि वचन** उनकी रचनाएँ मानी जाती हैं। अक्क महादेवी की कविता को पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था के प्रति स्त्री विद्रोह का क्रांतिकारी दस्तावेज कहा जा सकता है। भारतीय साहित्य में उनकी कविता भी मीरा की कविता की तरह ऊपर से देखने में आध्यात्मिक और व्यक्तिगत है किंतु सामाजिक दृष्टि से वह शोषित, पीड़ित और अपमानित नारी जाति के दुख का प्रकाशन भी है और उस दुख के विरुद्ध विद्रोह भी। अपने एक वचन में वे कहती हैं–

घर बनाकर पहाड़ पर मृगों से डरते हैं क्या ?
घर बनाकर समुद्र किनारे, फेनीली लहरों से
डरते हैं क्या ?
घर बनाकर बाजार बीच में, शब्दों से लजाते हैं क्या ?
सुनो मल्लिकार्जुन! लोक में पैदा होने पर
स्तुति-निंदा आने पर, नाराज न होकर शांत रहना।

इस प्रकार वे अपने विरोधियों को सीधी चुनौती देती हैं और सदियों से स्त्रियों के ऊपर लादी हुई अमानवीय व्यवस्था का विरोध करती हैं। एक जगह वे कहती हैं–

प्यार किया मैंने जगवंद्य के साथ
बना बैरत्व लिया, सारे संसार के साथ

चन्न मल्लिकार्जुन शिव के प्रति अक्क की भक्ति एकनिष्ठ और माधुर्य भाव की है। वे हमेशा शिव के ध्यान में मग्न रहती थीं पर दुनिया उनके शरीर को देखती थी उनके मन को नहीं। वे शिव के अलावा बाकी सभी पुरुषों को भाई मानती थीं। पुरुष के लोभ और लालसा के आतंक को सहते-सहते अक्क परेशान थीं। उन्होंने एक वचन में अपनी बेचैनी इस तरह व्यक्त की है:

ओ भाई!
तुम मेरी सुंदरता
मेरे वक्ष
और मेरी जवानी को देखकर
आकर्षित हो
पर भाई!
मैं महज एक स्त्री नहीं हूँ
मैं वेश्या भी नहीं हूँ
तुम बार-बार मुझे देखते हुए

क्यों मेरा पीछा कर रहे हो?
देखो, मैं अपने ईश्वर के अलावा
किसी भी व्यक्ति का मुँह नहीं
देखना चाहती।

अक्क की नग्नता के बारे में भी तरह-तरह की बातें की जाती थीं, इसलिए उन्होंने अपने एक वचन में अपनी नग्नता के रहस्य को व्यक्त करने का प्रयास किया है:

अगर फल भीतर से पका न हो
तो उसके छिलके में भी
पकेपन का रंग नहीं
अगर तुम यह जानते हो
की कामवासना
किस चीज से पैदा होती है
तो तुम दुखी होगे
यही सोचकर मैंने उसे
ढक दिया है
इसलिए उसके बारे में दुख और चिंता क्यों ?
भाई! मुझे परेशान मत करो
क्योंकि मैं देवताओं के देवता
के साथ एकाकार हो चुकी हूँ।

अक्क महादेवी अपनी परेशानियों से चिंतित परंतु भयभीत नहीं थी। उन्होंने अपनी निर्भयता को इस तरह व्यक्त किया है:

मेरे मन डरो नहीं
डरो नहीं मेरे मन
सत्य को पाकर भी
तुम चिंतित न हो
फल वाले वृक्ष पर
लाखों लोग पत्थर मारते हैं
फल पाने के लिए
मैंने किसी को रेशमी कपास के पौधे पर
पत्थर मारते नहीं देखा
जिसने भक्ति पा ली है
बहुत लोग गाली देते हैं उसको
पर जो लोग भक्तिविहीन है
उनको कोई गाली नहीं देता
हमारे भक्तों के शब्द ही
हमारे लिए सीढ़ी की तरह है
जो हमें ईश्वर तक पहुँचाते हैं।

एक अन्य वचन में उन्होंने अपनी निर्भयता और दृढ़ता को यो व्यक्त किया है :

इस बात की चिंता न करो
कि मैं पूरी तरह से अकेली हूँ

वे जो कुछ भी करेंगे
उससे मैं भयभीत नहीं हूँ
मैं सूखी पत्तियाँ खाऊँगी
और तलवार की धार पर सो जाऊँगी
ओ! जूही के फूल की तरह श्वेत ईश्वर
यदि तुम मेरी परीक्षा लेना चाहते हो तो
मैं तुम्हें सौंपकर निर्मल हो जाऊँगी।

चन्न मल्लिकार्जुन की अनुकंपा पाने के लिए हर भौतिक वस्तु से अपनी झोली खाली रखना चाहती हैं अक्क। अपने एक वचन में वे कहती हैं:

हे मेरे जूही के फूल जैसे ईश्वर
मंगवाओ मुझसे भीख
और कुछ ऐसा करो
कि भूल जाऊँ अपना घर पूरी तरह
झोली फैलाऊँ और न मिले भीख
कोई हाथ बढ़ाए कुछ देने को
तो वह गिर जाए नीचे
और यदि मैं झुकूँ उसे उठाने तो कोई कुत्ता आ जाए
और उसे झपटकर छीन ले मुझसे

यह है एक भक्त का अपने आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पण भाव। यहाँ उन्होंने ऐसी निस्पृह स्थिति की कामना की है जिससे उनका स्व या अहंकार पूरी तरह नष्ट हो जाए।

स्त्री की पराधीनता का एक कारण उसका शरीर माना जाता है। अक्क महादेवी अपने शरीर को पराधीनता के साधन के बदले मुक्ति का माध्यम बनाती हैं। इसलिए उन्होंने अपनी कविता में अपने शरीर का सजीव और ऐंद्रिक चित्रण किया है। विवाह के रूपक के माध्यम से अपनी भावना व्यक्त करने वाली कवयित्री के लिए यह स्वाभाविक ही है। यद्यपि मीरा ने भी स्वप्न में कृष्ण से अपने विवाह का चित्रण किया है, परंतु उनकी कविता में शरीर के वर्णन में वैसी ऐंद्रिकता नहीं है जैसी अक्क महादेवी में। आत्माभिव्यक्ति का ऐसा साहस स्त्री काव्य में आज भी दुर्लभ है, जो 12वीं सदी की अक्क महादेवी में मिलता है।

अक्क महादेवी ने लोक-लाज और कुल-कानि को ही नहीं छोड़ा था बल्कि अपने वस्त्रों को भी उतार फेंका था। यह कहा जाता है कि मीरा अपने जीवन के अंत में कृष्ण की मूर्ति में समा गई थीं। ठीक उसी तरह अक्क महादेवी भी शिव से एकाकार होकर इस लोक से विदा हुई। अक्क महादेवी के 'वचनों' में वैसी ही उत्कट प्रेम भावना और उदात्त आध्यात्मिक चेतना है जैसी मीरा के काव्य में मिलती है। वे भी अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए मीरा की तरह कई बार माँ को संबोधित करती हैं। मीरा की तरह ही उनकी कविता में गहरी वेदना की अभिव्यक्ति है जो लौकिक भी है और अलौकिक भी। अक्क महादेवी की कविता में कभी सीधे-सीधे और कभी रूपक के रूप में प्रकृति अपने प्रभावशाली रूप में मौजूद हैं।

वीर शैव आंदोलन में अक्क महादेवी की प्रेरणा से बड़ी संख्या में स्त्रियाँ जुड़ीं और कविता के रूप में उन्होंने अपनी आत्माभिव्यक्ति का प्रयास किया। आज भी कन्नड़ में जब भी स्त्री मुक्ति की बात उठती है तब अक्क महादेवी और उनकी कविता को स्त्री के साहस और उसकी मुक्ति की चेतना के लिए याद किया जाता है। इस सदी के 70 के दशक में कन्नड़ की जिन कवयित्रियों ने अपने काव्य में स्त्री-मुक्ति की कामना व्यक्त की है

उनमें अधिकांश ने अक्क महादेवी पर कविताएँ लिखी हैं। यहाँ तक कि स्त्री मुक्ति के विरोधी भी उन्हें भुला नहीं पाते। उनकी सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति की चेतना उसी तरह आज भी प्रेरणादायी है जैसे मीरा की। यह बहुत संभव है कि आज की लेखिकाएँ अक्क महादेवी और मीरा बाई की भक्तिभावना से एकता अनुभव न करें लेकिन उनकी सामाजिक चिंता और कविता की शक्ति से नैतिक ताकत और रचनात्मक प्रेरणा अर्जित करती हैं और करनी चाहिए।

9.3.3 मुक्ताबाई

मराठी संत भक्त कवयित्रियों में तीन नाम प्रमुख हैं– मुक्ताबाई, जनाबाई और बहिणा बाई। महाराष्ट्र की संत कवयित्रियों में मुक्ताबाई को बहुत आदर प्राप्त है। ये ज्ञानेश्वर की बहिन थीं परंतु ज्ञानेश्वर की बहिन होने के कारण ही नहीं, अपने तेजस्वी और परमार्थ-परक चरित्र के कारण लोगों की इन पर श्रद्धा है। ज्ञानदेव के समान ही इनके प्रारंभिक जीवन के बारे में प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। ऐसा माना जाता है कि मुक्ताबाई का जन्म सन् 1279 में हुआ और अपने भाइयों निवृतिनाथ, ज्ञानदेव और सोपानदेव की तरह ही उनकी मृत्यु अल्पायु में ही हो गई। मुक्ताबाई का स्वतंत्र जीवन चरित्र उपलब्ध नहीं है। ब्राह्मणों ने संन्यासी की संतान होने के कारण चारों भाई-बहिनों को समाज में मान्यता प्राप्त नहीं होने दी इसलिए मुक्ताबाई आजीवन अविवाहित रहीं और अपने भाइयों के साथ परमार्थ साधना में लगी रहीं। जिस समय ज्ञानदेव ने समाधि ली तब ज्ञानदेव की आयु 21 वर्ष की थी। समाधि के निकट अश्रु रूपी पुष्पांजलि अर्पित करते समय वे इतनी ही बोली :

आन्हां माता पिता नित्य ज्ञानेश्वर
न ही आतां थार विश्रांती सी।

कुछ समय पश्चात सोपानदेव ने भी समाधि ले ली। इसके बाद मुक्ताबाई निरंतर उदास रहने लगीं। अपने पितृस्थान के दर्शन करके वे माणगाँव आईं जहाँ मेघगर्जन और जलवृष्टि के समय उन्होंने 18 वर्ष की आयु में अपनी इहलीला समाप्त की। मुक्ताबाई ने अपने भाई निवृतिनाथ से गुरुदीक्षा ली थी।

मुक्ताबाई की रचनाएँ बहुत कम प्राप्त हैं। **ज्ञानदेवी गाथा** में उनके 42 अभंग हैं। 'ताटीचे अभंग' भी उनके कहे जाते हैं परंतु वे 'ज्ञानदेवी गाथा' में नहीं है। यह भी माना जाता है कि उन्होंने 100 के लगभग अभंगों की रचना की। मराठी संतों में मुक्ताबाई के महत्व का पता इससे लगता है कि प्रसिद्ध मराठी संत चोखामेला ने अपनी एक कविता में लिखा है कि उन्हें अगर पुत्र प्राप्त हो तो उसे संत होना चाहिए और यदि पुत्री प्राप्त हो तो मुक्ताबाई की तरह होना चाहिए। मुक्ताबाई मराठी के वारकरि संत संप्रदाय से जुड़ी हुई थीं। वारकरी महाराष्ट्र का प्रमुख संत संप्रदाय माना जाता है वारी (यात्रा) करी (करने वाला) = यात्रा करने वाला। जो यात्रा करता है वह वारकरी कहलाता है। धार्मिक दृष्टि से वारकरी उसे कहते हैं जो पंढरपुर स्थित विट्ठल या विठोबा का उपासक है।

धार्मिक कर्मकांड और सांसारिक जीवन से पलायन जैसी ब्राह्मण धर्म की परंपराओं के विरोध में एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया के विरोध में वारकरियों के भक्ति आंदोलन की शुरूआत हुई। समाज की निम्न समझी जाने वाली जातियों और व्यवसायों से संबंधित लोग इस संप्रदाय में शामिल हुए। वारकरी संप्रदाय ने भक्ति के द्वार सभी जन साधारण के लिए खोल दिए थे। इस संप्रदाय को व्यवस्थित, सुसंगठित और प्रतिष्ठित करने का

श्रेय ज्ञानेश्वर को है। उन्होंने इसके प्रचार-प्रसार में अपने सभी भाई-बहिन की मदद ली थी। इस संप्रदाय के उदय के बारे में कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। प्रसिद्ध संत कवयित्री बहिणा बाई का एक अभंग है जिसमें उन्होंने ज्ञानेश्वर को इस पंथ की नींव कहा है। ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम जैसे वारकरी संतों के अनुसार विट्ठल की उपासना बहुत पहले से प्रचलित थी। कुछ विद्वानों के अनुसार पंढरपुर में विट्ठल भक्ति लगभग छठी शताब्दी में आरंभ हो गई थी। लेकिन पंढरपुर के मंदिर और उसमें विट्ठल की स्थापना 999 ई. में हुई थी। निश्चित रूप से वारकरी संप्रदाय की स्थापना के बाद विट्ठल की उपासना का प्रचार-प्रसार 12-13 शती में हुआ। इस संप्रदाय में ब्राह्मण वर्ग के ही नहीं बल्कि सभी निम्न जातियों के पुरुष, स्त्री संतों का समावेश है जिनमें संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, चोखामेला, मुक्ताबाई, जनाबाई आदि प्रमुख हैं। वारकरी संत कृष्ण (विट्ठल) के प्रति भक्ति रखते हुए भी अद्वैतवादी हैं जिसमें ईश्वर और भक्त दोनों को एक रूप माना जाता है। ये भक्ति को विशेष महत्व देते हैं जिसमें वात्सल्य, सख्य और दास्य भक्ति पर विशेष बल है। वारकरी सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं मानते। उनकी भक्ति में ऊँच-नीच और जाति का महत्व नहीं बल्कि आचरण की शुद्धता पर अत्यधिक जोर है। इन संतों ने कर्मकांडों और रूढ़ियों का विरोध किया है। नाम स्मरण और संकीर्तन को विशेष महत्व देते हुए इन संत कवियों ने ज्ञान और भक्ति के समन्वय का प्रयास किया। जन सामान्य को भक्ति रस से ओत-प्रोत करने के उद्देश्य से इन संत कवियों ने अत्यंत सरल मराठी भाषा में रचना की। अभंग भारूद जैसे सरल छंदों का प्रयोग इनकी रचनाओं में मिलता है। कई संतों ने मराठी के साथ-साथ हिंदी भाषा में भी रचना की है।

मुक्ताबाई भी अन्य वारकरी संतों की तरह कोरी भक्ति और कोरे ज्ञान को निरर्थक समझती थीं। ज्ञान समन्वित भक्ति उन्हें मान्य थी और साधना के पथ पर गुरु का मार्गदर्शन वे आवश्यक समझती थीं। मुक्ताबाई ने कुछ अभंग संवाद के रूप में भी लिखे हैं। कविता में यह संवाद प्रायः वे अपने भाइयों से करती हैं। उदाहरण के रूप में ज्ञानेश्वर से मुक्ताबाई के संवाद से संबंधित तीन मराठी कविताओं के हिंदी अनुवाद यहाँ दिए जा रहे हैं:

(1)
ब्रह्म ही यथार्थ है
बाकी सब पंच तत्व
जब तुम्हें तुम्हारे ही हाथ से
चोट लगती है
क्या तुम नाराज होते हो
जब दांत जीभ को काटती है
क्या हम बत्तीसी तोड़ देते हैं
बड़ा से बड़ा दुख या अपमान भी
भविष्य के लिए एक सीख है
जो लोहे के चने चबा सकता है
वही ब्रह्म पर अपना ध्यान केंद्रित
कर सकता है
मन को मारो विरागी बनो
हे ज्ञानेश्वर अपना दरवाजा खोलो

(2)
आनंद का समुद्र बनने के लिए
अपने अनुभव का ज्ञान
दुनिया को दान दो
ज्ञान देते समय कोई भेदभाव मत करो
साधु के लिए न कोई अपना होता है और न कोई पराया
किसी वस्तु या व्यक्ति से घृणा मत करो
अपना जीवन त्यागने के लिए तत्पर रहो
ऐसे उत्थान के लिए
हे! ज्ञानेश्वर अपना द्वार खोलो।

(3)
तुम ज्ञान की खान हो
तुम्हें क्रोध कैसे हो सकता है
तुम जानते हो कि
मनुष्य ईश्वर का अंश है
तुमने उनकी सेवा का व्रत लिया है
जिसे तुम तोड़ नहीं सकते
अगर तुम एक बार भी क्रोधित होते हो
तो तुम्हारा योग नष्ट हो जाएगा।

उपर्युक्त रचनाओं को देखने से यह स्पष्ट होता है कि मुक्ताबाई अन्य वारकरी संत कवियों की तरह प्रेम के साथ ज्ञान और योग को ईश्वर की भक्ति के लिए आवश्यक मानती हैं। मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद उन्हें स्वीकार नहीं था।

9.3.4 जनाबाई

(1298-1350) महाराष्ट्र के संतों-भक्तों में जनाबाई का नाम भी बहुत आदर के साथ लिया जाता है। संत तुकाराम के एक छंद में जनाबाई के महत्व की पहचान व्यक्त हुई है। जनाबाई, मुक्ताबाई की लगभग समकालीन थीं और वारकरी संत संप्रदाय की प्रमुख कवयित्री थीं। जनाबाई एक गरीब दलित परिवार में पैदा हुई थीं। एक तो दलित और दूसरे स्त्री, फिर भी उनके मन में अपनी निम्न स्थिति से उपजी कोई हीन भावना नहीं थी। उन्होंने अपनी एक कविता में लिखा है कि मैं स्त्री हूँ इसलिए मुझे दुखी नहीं होना है। इस दुनिया में संतों ने ऐसे दुख झेले हैं जैसे मैंने भी।

उनका परिवार गोदावरी नदी के किनारे रहता था और घरेलू नौकर का काम करता था। जब जनाबाई सात वर्ष की थी तभी उन्हें कवि नामदेव के पिता के घर नौकरानी के रूप में रख दिया गया था। उसी रूप में उन्होंने अपना जीवन बिताया। जनाबाई की कविताओं में सांसारिक दुखों और प्रतिबंधों का वर्णन मिलता है जिनका उन्होंने अनुभव किया था, जनाबाई एक दासी के रूप में जीवन बिताने की सीमाओं और समस्याओं को अपनी कविता में व्यक्त करती हैं। इस तरह उनकी कविता में एक दलित होने के साथ-साथ एक स्त्री होने का दुख भी प्रकट हुआ है फिर भी वे अपने मन को मुक्त मानती हैं। मुक्ति की यह चेतना उन्हें भक्ति से प्राप्त हुई थी।

वारकरी विट्ठल (विठोबा) को विष्णु का कृष्णावतार मानकर पूजते हैं। जनाबाई की कविता में विठोबा संबोधन बार-बार आया है। नीचे उनकी कुछ कविताओं का हिंदी अनुवाद दिया जा रहा है–

(1)
लज्जा छोड़ो
खुद को बाजार में बेचो
तभी तुम
ईश्वर के पास पहुँच सकती हो
हाथ में करताल कंधे पर वीणा है
इस तरह मैं चल रही हूँ
मुझे कौन रोक सकता है
मेरी साड़ी का पल्लू गिर जाता है
फिर भी मैं भीड़ भरे बाजार में
बेफिक्र घूमती हूँ
जानी कहती है हे मेरे ईश्वर मैं कुलटा बन गई हूँ
ताकि मैं तुम तक पहुँच सकूँ।

उपर्युक्त कविता में जो निर्भीकता दिखाई देती है मीरा में भी वही निर्भीकता हम देख सकते हैं। मीरा की ही तरह जनाबाई की कविता में भी उनका वैयक्तिक जीवन मुखर है।

(2)
जानी घर बुहार रही है
ईश्वर कूड़ा बटोर रहा है
और अपने सिर पर लादकर
बाहर फेंक रहा है
भक्त ने भक्ति से भगवान को जीत लिया है
भगवान भक्त के लिए मामूली काम भी करते हैं
जानी बिठोवा से कहती हैं
मैं तुम्हारा ऋण कैसे चुकाऊँ।

(3)
एक दिन मैं नहाने गई
पर पानी कम था
ईश्वर दौड़ता हुआ आया,
ठंडा पानी दिया और बोला
यह तुम हो ?
उसने अपने हाथों से पानी मिलाया
मेरे सिर पर गिराया
और मेरे बालों पर भी
मैं कई दिनों से नहाई नहीं थी
उसने मेरे बाल धोए और कहा
चुपचाप बैठो मैं यह करूँगा
उसने माँ की तरह मेरे बाल गूँथे।

(4)
मैं धान कूटने चली
ईश्वर ने ओखली साफ की
और मेरे साथ धान कूटने लगा
धान कूटते-कूटते पंढरपुर का मालिक थक गया
वह पसीने पसीने हो गया
उसका पीताम्बर भीग गया
हाथ-पैरों पर फफोले निकल आए
जानी कहती है अब इसे छोड़ दो
तुमने बहुत किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जनाबाई की कविता और जीवन में एकता दिखाई देती है। उनके जीवन का कर्म ही उनकी कविता का धर्म बन गया और वह उनके धार्मिक जीवन का आधार भी हो गया। वारकरी संप्रदाय के दूसरे संत-भक्त कवियों की तरह जनाबाई की कविता को पढ़ते हुए पाठक जनाबाई के जीवन, कर्म और धर्म से परिचित होते हैं। जिस प्रकार मीरा के प्रियतम और आराध्य कृष्ण थे उसी प्रकार जनाबाई के आराध्य विठोबा थे जिन्हें विष्णु का कृष्णावतार माना जाता है।

9.3.5 बहिणाबाई

मीरा की परवर्ती भारतीय भक्त कवयित्रियों में प्रमुख हैं महाराष्ट्र की प्रसिद्ध भक्त कवयित्री बहिणाबाई। उनका जन्म 17वीं शताब्दी में हुआ। ये तुकाराम की शिष्या थीं। बहिणाबाई के काव्य में एक ओर मीरा की तरह गोपीभाव की भक्ति है तो दूसरी ओर निर्गुण संवेदना के पद भी हैं। महाराष्ट्र के अधिकांश संत-भक्त कवियों की तरह बहिणाबाई ने भी मराठी के साथ-साथ हिंदी में भी कविता लिखी है। पहले बाल विवाह की कुप्रथा की शिकार फिर पुनर्विवाह की पीड़ा से गुजरने के कारण बहिणा बाई ने एक स्त्री के रूप में अपने पारिवारिक जीवन के दुख-दर्द और यातना की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। बहिणाबाई ने लिखा है कि मैं लगातार अपने पति के आतंक में जीती रही और ग्यारह बरस की अवस्था तक एक क्षण भी मुझे सुख नहीं मिला। मुझे किसी तरह की स्वतंत्रता नहीं थी और मेरी इच्छाओं का कोई अर्थ नहीं था। मेरा दैनिक जीवन अत्यंत दुखमय था। भक्ति की ओर अपने झुकाव और साधु-संगत में रहने के कारण बहिणा का पति उसे पीटता था। बहिणाबाई ब्राह्मण होती हुई भी तुकाराम की शिष्या बनी, इसलिए भी उनके परिवार वाले उन्हें सताते थे। बहिणाबाई के अनेक पदों में एक स्त्री के रूप में उनके जीवन की यातना की अभिव्यक्ति है। उन्होंने कहा है कि मैं अपने स्त्री शरीर के कारण पराधीन थी और इसलिए सांसारिकता से मुक्ति की अपनी आकांक्षा पूरी करने के लिए भी स्वतंत्र नहीं थी। बहिणा वैदिक रीति-रिवाज को अपनी पराधीनता का कारण मानती थी। भक्ति भावना की समतामूलक दृष्टि के बावजूद भक्ति संप्रदायों में स्त्री का प्रवेश सहज और सुगम नहीं था। इस स्थिति का बोध और उससे उपजी कठिनाइयों का सामना मीरा को भी करना पड़ा और बहिणा को भी। बहिणाबाई ने लिखा है कि 'वेद चिल्लाते हैं और पुराण चीखते हैं कि स्त्री में कुछ भी शुभ नहीं है, पर मैं तो प्राकृतिक रूप से स्त्री हूँ, ऐसे में मैं कैसे आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त करूँ ? मुझे वेद-पाठ सुनने का अधिकार नहीं है और ब्राह्मणों ने गायत्री मंत्र को गुप्त और रहस्य बना रखा है। मुझे ओम कहने का भी अधिकार नहीं है।'

मीरा की तरह बहिणाबाई ने भी ईश्वर का सहारा पाकर सामाजिक रूढ़ियों और सांसारिक बंधनों से मुक्ति पाई थी। जैसे मीरा कहती हैं कि 'राजा रूठे नगरी राखे हरि रूठ्यां कह जाणां' वैसी ही भावना बहिणा की कविता में मिलती है। जिस तरह मीरा ने कृष्ण के रूप और सौंदर्य तथा प्रेमलीला का वर्णन अपने काव्य में किया है, उसी तरह के माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति बहिणाबाई के अनेक पदों में है।

इनकी कृष्ण संबंधी रचनाएँ **गौलण** शीर्षक के अंतर्गत रखी जा सकती हैं। बहिणा बाई कहती हैं कि गौलण (गोपी) का मन कृष्ण से मिलने के लिए आतुर होता है। वह सब कुछ भूलकर संकेत स्थल पर दौड़ना चाहती है और अपने आराध्य प्रियतम कृष्ण के साथ एकाकार हो जाना चाहती हैः

जमुना के तिर धेनु चरावत है गोपाल री।
गीत प्रबंध हास्य विनोद नाचत है श्री हरी।
धर कानों में कुंडल लाल, सिर पर मोरपिखा नंदलाल
अबीर गुलाल सबके माला, हार सुवास पिन्हाये।
जाइ जुई चम्पक कोमल चंदन चोवा लाए
छंद धीमा धीमा सुनावत है हरि, बंध गयो मेरो प्रान
बहिणी कह सो भूल गए मेरा हरि से लगा है मन।

उनकी निर्गुण संवेदना का भी एक पद नीचे दिया जा रहा है। मीरा के यहाँ भी कई पदों में निर्गुण-सगुण की एकता दिखाई देती हैः

जटा न कंथा सिंगी न शंख
अलग भेक हमारा बाबा
झोली न पत्र कान में मुद्रा
गगन पर देख तारा ।।1।।

बाबा हमतो निरंजन वासी,
साधू संत योगी जान लो हम क्या जाने घरवासी
माता न पिता बंधु न भगिनी
गव गोत ओ सब न्यारा
काया न माया रूप न रेखा
उलटा पंथ हमारा बाबा।।2।।

धोती न पोथी जात न कुल
सहजी सहजी भेक पाया
अनुभवी पत्रि सी सिद्ध की खादी
उन नी ध्यान लगाया।।3।।

बोध बल पर बैठा भाई
देखत है तिन्ह लोक
उर्ध्व नयन की उलटी पाती
जहाँ प्रकाश आनंद कोटी।।4।।

भाव भगत मांगत भिक्षा
तेरा मोक्ष कीदर रहा दिखाई
बहिनी कहे मै दासी संतन की
तेरें पर बलि जावे ।।5।।

9.3.6 ललद्यद

चौदहवीं सदी के आरंभ में जन्मी कश्मीर की ललद्यद को दूसरी राबिया भी कहा जाता है। वे भारतीय भक्त कवयित्रियों में विशेष उल्लेखनीय हैं। ललद्यद कश्मीर के हिंदुओं और मुसलमानों की भाषा और स्मृति में इस तरह रची-बसी हैं कि उनको छोड़कर कश्मीरी संस्कृति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। हम कह सकते हैं कि ललद्यद कश्मीर में उसी तरह लोकप्रिय हैं जैसे मीरा गुजरात और राजस्थान में। उन्हें आधुनिक कश्मीरी भाषा और कविता की जननी माना जाता है।

ललद्यद को लल्लेश्वरी, लला, लल्लयोगेश्वरी और ललरिफा आदि नामों से भी जाना जाता है। अनेक संत-भक्त कवियों की तरह ललद्यद ने भी अपने बारे में कुछ नहीं कहा है। अतः उनके जीवन के बारे में प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। इधर-उधर बिखरे सूत्रों से यह ज्ञात होता है कि उनका जन्म श्रीनगर के पांद्रेठन गाँव में हुआ। अनुमानतः उनका समय 1318 ई. से 1383 ई. के बीच माना जाता है। पाम्पुर में उनकी ससुराल थी। उनका विवाह बचपन में ही हो गया था। कहा जाता है कि उनका वैवाहिक जीवन अत्यधिक कष्टप्रद रहा। विवाहोपरांत उन्हें सास की कटु आलोचनाओं और यंत्रणाओं का शिकार होना पड़ा, पति के अभद्र व्यवहार ने भी उन्हें दुख पहुँचाया। जब वे ज्यादा न झेल सकीं तो आखिर एक दिन रात में घर-बार छोड़कर भगवान शंकर की शरण में चली गईं और अंत में शिव तत्व को पाकर सौभाग्यशालिनी बन गईं।

ललद्यद एक विदुषी नारी थीं। बचपन से ही वे एकांत प्रिय और चिंतनशील थीं। सांसारिक वस्तुओं में उन्हें कोई दिलचस्पी और आकर्षण न था। वे सदैव ईश्वर भक्ति, धर्म, दर्शन, योग समेत आध्यात्म में तल्लीन रहीं। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा अपने कुल गुरु सिद्धमोल से प्राप्त की। अपने एक वाख में वे कहती हैं:

वोवसर ने ननम कुनुई वचुन ।
नेबरू दोपनम अंदर अचुन।।
सुयम्य ललि गव वाख त वचुन।।
तवय हयोतुम नंगय नचुन।।

इसको हिंदी में इस तरह कहा जा सकता है:

मुरशिद ने फकत एक बात कही
कि बाहर का आलम छोड़कर तू
अंदरूनी आलम में चली जा
इस बात को मैं हिदायत समझी
और उसी वजह से दुनियादारी की परवाह किए बिना बेफिक्र घूमने लगी।

ललद्यद अनंत स्वरूप शिव के प्रति अनन्य भक्ति रखने वाली उपासिका थीं। वर्षों साधनारत रहने के पश्चात् जाति, वर्ग कुल और संप्रदाय की सीमाओं से ऊपर उठकर वे मानव के विकास के लिए चिंतनरत रहीं। उन्होंने भक्ति के ऐसे रास्ते पर चलने पर जोर

दिया जिसका जुड़ाव जीवन से हो। ललद्यद ने धार्मिक आडंबरों का विरोध किया और प्रेम को सबसे बड़ा मूल्य माना। वे भी कबीर की तरह यूँ कहने लगीं:

यह देवता पत्थर है
यह पत्थर ऊपर नीचे
सब पत्थर पत्थर है
हे बेवकूफ पंडित! तू किसकी पूजा करेगा
अगर जरा भी अक्ल है तुझमें
तो मन और पवन को एक कर दे।

यहाँ उन्होंने बाह्य विधानों को छोड़कर मन को केंद्रित करने की बात की है। वे मनुष्य को ज्ञानी और विवेकशील बनाने के लिए सतत् तत्पर रहीं। आत्मसंयम और आत्मनिग्रह से ही उन्होंने अपने लल नाम को सिद्ध किया है। उन्होंने कहा है:

मन के मैल को गला दिया जला दिया
इच्छाओं का गला घोंटा
तब कहीं सिद्ध हुआ 'लल' नाम
जब (अपना सर्वस्व) उसके आँचल में डाल दिया।

ललद्यद की कविता में कबीर की तरह गहरी बौद्धिक जिज्ञासा है और मीरा की तरह भावनाओं की दृढ़ता। जब वे विरह के भाव की अभिव्यक्ति करती हैं तब वे मीरा की संवेदना के निकट जान पड़ती हैं। उन्होंने एक वाख में कहा है कि 'मैंने उनको बार-बार खोजा और अपनी ताकत से अधिक कोशिश की। उनके दरवाजे को बंद देखकर मेरी आकांक्षा और बढ़ गई। मैंने निश्चय किया और वहीं खड़ी रही आकांक्षा और प्रेम के साथ लगातार उनके दरवाजे को निहारती हुई। 'ललद्यद और मीरा दोनों ही अपने प्रिय को पाने के लिए लज्जा से मुक्ति आवश्यक मानती हैं, चाहे वह व्यक्तिगत हो या सामाजिक। ललद्यद ने लिखा है कि मैंने लज्जा के बंधन को कब तोड़ा ? वे स्वयं उत्तर देती हैं कि जब मैंने अपने पर दुनिया वालों के हँसने और ताने कसने की चिंता छोड़ दी। उन्होंने यह भी कहा है कि मैंने गौरव की पोशाक कब उतार फेंकी ? फिर वे उत्तर देती हुई कहती हैं कि जब मेरा मन सांसारिक इच्छाओं से मुक्त हुआ। परंतु ललद्यद की कविता में अक्क महादेवी और मीरा की तरह ऐंद्रिक बिंब और दाम्पत्य भाव नहीं है। हम कह सकते हैं कि उनकी कविता में भावनाओं का आवेग पैदा करने की जगह विचारों की प्रेरणा देने की क्षमता अधिक है।

ललद्यद की काव्य शैली को वाख कहा जाता है जो चार पंक्तियों का होता है और अपने रूप में संपूर्ण। वह बहुत कुछ उपनिषदों की सूक्तियों की तरह है। उसे मीरा के पदों की तरह गाना मुश्किल है। वाख ललद्यद की ही देन कही जाती है। उन्होंने वाख को जिस बुलंदी पर पहुँचाया उससे आगे ले जाने वाला शायद ही कोई कवि अब तक हुआ हो। यही वजह है कि इन वाखों को ललवाख भी कहा जाता है। उनकी काव्य भाषा जन भाषा है इसलिए उनकी रचनाएँ सैकड़ों सालों से कश्मीरी जनता की स्मृति और वाणी में आज भी जीवित हैं। कबीर की तरह ललद्यद ने भी 'मसि कागद' का इस्तेमाल नहीं किया। उनके वाख लगभग साढ़े चार सौ वर्षों तक मौखिक परंपरा में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक श्रव्य काव्य के समान पहुँचते रहे। पहली बार जार्ज ग्रियर्सन ने 1914 में इन वाखों को घाटी में रह रहे लोगों के घर-घर जाकर लिपिबद्ध किया और उसका अंग्रेजी में अनुवाद किया। यह पुस्तक ललवाक्यानि नाम से प्रकाशित हुई। ग्रियसन महोदय ने अपनी भूमिका में लिखा है कि कश्मीरी कवयित्री ललद्यद जिसे संस्कृत में ललयोगेश्वरी नाम से भी जाना जाता है, प्रसिद्ध सूफी संत सैयद अली हमदानी की समकालीन थीं।

जार्ज ग्रियसन से पहले 18वीं सदी में भास्कर राजदान ने ललद्यद के वाखों का संस्कृत में अनुवाद किया था। उनकी कविता ने अभिजात और सामान्य जन के बीच संवाद की प्रक्रिया शुरू की इसलिए कश्मीर के कवियों और साधकों ने उन्हें बार-बार आदर और सम्मान के साथ याद किया है। हम कह सकते हैं कि ललद्यद कश्मीरी जनता की सांस्कृतिक पहचान हैं। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व कश्मीरी भक्ति काव्य का आधार स्तम्भ है। उनका रचना-संसार आज भी हमारे लिए प्रेरणास्रोत है।

9.4 सारांश

भारतीय भक्त कवयित्रियाँ और मीरा नामक इस इकाई में हमने आंदाल, अक्क महादेवी, मुक्ताबाई, ललद्यद और बहिणाबाई जैसे प्रमुख भक्त कवयित्रियों की चर्चा की है। ये सब भक्त कवयित्रियाँ अपनी भाषा में अत्यंत प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं तथा जिनकी अखिल भारतीय ख्याति है। इस अध्ययन से हमें यह भी पता चलता है कि आंदाल हो या अक्क, मीरा हो या ललद्यद इन सबको प्रेम के लिए घर-द्वार, भाई-बंधु, स्वजन-परिजन, कुल की मर्यादा और यहाँ तक कि राजसत्ता का भी परित्याग करना पड़ा। यहाँ यह तथ्य भी गौर करने लायक है कि इनमें से अधिकांश भक्त कवयित्रियों के बारे में यह प्रचलित है कि वे अदृश्य हो गईं या अपने अराध्य की प्रतिमा में अंतर्लीन हो गईं। इससे हमारे पितृसत्तात्मक समाज का स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण का पता चलता है। भक्तिकाल ने स्त्री रचनाशीलता के विकास का मार्ग प्रशस्त किया और साहित्य में नई परंपरा के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस काल में भारत की प्रत्येक भाषा में अनेक महत्वपूर्ण कवयित्रियाँ पैदा हुईं, जिनमें से कुछ की अखिल भारतीय ख्याति है। प्रस्तुत इकाई में उनके बारे में ही चर्चा की गई है।

9.5 अभ्यास प्रश्न

1. मध्यकालीन भारतीय भक्त कवयित्रियों के नाम बताते हुए उनके साहित्य पर प्रकाश डालिए।
2. मध्यकालीन भक्त कवयित्रियों की कविता की विशेषता बताइए।
3. मध्यकालीन भक्त कवयित्रियों की कविताओं और मीरा की कविताओं में क्या अंतर है? स्पष्ट कीजिए।
4. मध्यकालीन भक्त कवयित्रियों में मीरा का क्या महत्व है?

इकाई 10 मीरा परवर्ती हिन्दी की भक्त कवयित्रियाँ

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 राजघराने से संबंधित भक्त कवयित्रियाँ

- 10.2.1 महारानी सोन कुँवर
- 10.2.2 वृषभान कुँवरि महारानी
- 10.2.3 ब्रजदासी रानी बाँकावत जी
- 10.2.4 सुंदर कुँवरि
- 10.2.5 छत्रकुँवरि रानी
- 10.2.6 जाम सुता प्रताप कुँवरि (जाड़ेची प्रताप का)
- 10.2.7 बाघेली विष्णु प्रसाद कुँवरि
- 10.2.8 प्रताप कुँवरि बाई
- 10.2.9 रत्न कुँवरि बाई
- 10.2.10 गिरिराज कुँवरि
- 10.2.11 बाघेली रणछोड़ कुँवरि

10.3 अन्य भक्त कवयित्रियाँ

- 10.3.1 बनीठनी जी
- 10.3.2 बीराँ
- 10.3.3 तुलछयराय

10.4 साधारण जन समुदाय से आने वाली संत भक्त कवयित्रियाँ

- 10.4.1 गंगा बाई
- 10.4.2 ताज
- 10.4.3 बीबी रत्न कुँवरि
- 10.4.4 चन्द्रसखी
- 10.4.5 प्रेम सखी
- 10.4.6 उमा
- 10.4.7 सहजो बाई
- 10.4.8 दया बाई

10.5 सारांश

10.6 अभ्यास प्रश्न

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- मीरा के बाद की सुदीर्घ और समृद्ध भक्त कवयित्रियों की परंपरा को जान सकेंगे;
- इस परंपरा की राजघराने से संबंधित कवयित्रियों की चर्चा कर सकेंगे; और
- इस परंपरा में मीरा का स्थान निर्धारण कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

भक्ति आंदोलन ने मध्यकाल के भारतीय समाज, संस्कृति और साहित्य को अनेक रूपों में गहरे स्तर पर प्रभावित किया। इस आंदोलन के कारण जो व्यापक लोकजागरण पैदा हुआ उससे भारत की लोकभाषाओं/भारतीय भाषाओं में साहित्य रचना का विकास हुआ। इस लोकजागरण से ही सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से पराधीन जन समुदाय में आत्मगौरव का बोध, आत्म सजगता, आत्माभिव्यक्ति की भावना एवं विद्रोह की प्रवृत्ति पैदा हुई। उसका एक रूप स्त्री भक्त कवियों की कविता में दिखाई देता है। भक्ति आंदोलन के काल में अखिल भारतीय स्तर पर स्त्री जागरण के फलस्वरूप अधिकांश भारतीय भाषाओं में अनेक कवयित्रियों की काव्यरचना सामने आई जिसका अध्ययन आप इकाई-9 में कर चुके हैं।

हिन्दी क्षेत्र की भक्त कवयित्रियों में मीरा के जीवन संघर्ष और काव्यरचना का विशेष महत्व और व्यापक प्रभाव है। उनके जीवन और काव्य से प्रेरणा लेकर पूरे हिन्दी क्षेत्र में अनेक भक्त कवयित्रियाँ सामने आईं लेकिन उनका सबसे अधिक प्रभाव राजस्थान के भक्तिकाव्य पर पड़ा जिसके परिणामस्वरूप राजस्थान में भक्त कवयित्रियों की एक सुदीर्घ और शक्तिशाली परंपरा निर्मित हुई जो 19वीं सदी तक चली आती है। इस परंपरा में एक ओर राजघराने से संबंध रखने वाली कवयित्रियाँ आगे आईं तो दूसरी ओर साधारण जनसमुदाय से भी। उनमें अधिकांशतः कृष्ण भक्ति काव्यधारा से जुड़ी हुई हैं तो कुछ राम भक्ति काव्यधारा इनमें कुछ निर्गुण भक्ति से प्रेरित और प्रभावित कवयित्रियाँ भी हैं।

भक्तिकाव्य के अध्ययन में मीरा के बाद की भक्त कवयित्रियों की सुदीर्घ और समृद्ध परंपरा की प्रायः उपेक्षा होती रही है। इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य मीरा के बाद की हिन्दी की भक्त कवयित्रियों की प्रायः अनुपलब्ध और अनेक अप्रकाशित रचनाओं का विश्लेषण करते हुए स्त्री भक्त काव्य परंपरा से विद्यार्थियों को परिचित कराना है। इन कविताओं का न केवल ऐतिहासिक महत्व है बल्कि सामाजिक महत्व भी है। विभिन्न वर्गों की स्त्रियों द्वारा लिखी गई ये कविताएँ ब्रज भाषा और राजस्थानी, दोनों भाषाओं में मिलती हैं। मीरा परवर्ती भक्त कवयित्रियों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है:

1. राजघराने से संबंधित भक्त कवयित्रियाँ
2. साधारण जनसमुदाय के बीच से आईं भक्त कवयित्रियाँ

10.2 राजघराने से संबंधित भक्त कवयित्रियाँ

राजघराने से संबंधित कृष्ण भक्त कवयित्रियों में सबसे पहला नाम मीरा का ही आता है। हम इस बात की चर्चा पहले कर चुके हैं कि हिन्दी में मीरा के बाद कवयित्रियों की एक सुदीर्घ परंपरा हमें पूरे हिन्दी क्षेत्र में मिलती है, विशेष रूप से राजस्थान के राजघराने से। यह मीरा की ही प्रेरणा थी कि जिसने राजसी ठाटबाट में रहने वाली महिलाओं को भगवद्भजन और ईश्वर प्रेम की ओर आकृष्ट किया। राजघराने की इन कवयित्रियों ने भी मीरा की तरह अपनी कविताओं में कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इन कवयित्रियों के रचना संसार में प्रवेश करते समय हमारे मन में सहज ही यह प्रश्न उठता है कि वैभव और सम्पन्नता से भरे हुए उनके दाम्पत्य जीवन में ऐसी कौन सी कसक या रिक्तता रही है जो उन्हें कृष्ण के प्रति प्रेम करने को बाध्य करती रही है? यह केवल भक्ति निवेदन नहीं था, वरन् एक अवलंब के माध्यम से अपनी आंतरिक टीस, खालीपन तथा निष्प्राण, निस्पंद होते जाने के विरुद्ध एक तीखी प्रतिक्रिया थी। मीरा की कृष्ण भक्ति

समाज, लोकलाज और पारिवारिक मर्यादा के विरुद्ध विद्रोह ही था, जिससे आगे की कड़ी इन राज रानियों से जुड़ती है और स्त्री जीवन के एक दबे कुचले संसार को प्रकाशित करती है।

यद्यपि इनमें से कुछ ही कवयित्रियों की कविताएँ स्वतंत्र रूप से प्रकाशित संग्रहों में या स्फुट रूप में यत्र-तत्र मिलती हैं, पर अधिकांश कवयित्रियों का साहित्य, संबद्ध राजघरानों के पुस्तकालयों, पुरातात्विक संस्थाओं में कहीं प्रकाशित और कहीं अप्रकाशित रूप में पड़ा है। पुस्तकालयों के अलावा अन्य संस्थाओं तथा कविता प्रेमी पाठकों के व्यक्तिगत संग्रहों में भी यह साहित्य मौजूद है, जिसकी खोज और संग्रह अभी बाकी है। हिन्दी साहित्य के अधिकांश इतिहास ग्रंथों में भी गिनी-चुनी कवयित्रियों के नामों का उल्लेख मिलता है।

मीरा के बाद की हिन्दी भक्त कवयित्रियों पर लिखने के लिए आधार सामग्री का नितांत अभाव दिखाई देता है फिर भी स्रोत (आधार) सामग्री और इकाई लेखन के लिए मुंशी देवी प्रसाद की पुस्तक "महिला मृदु वाणी" का आधार लिया गया है जो सन् 1905 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक से काफी मदद मिली है। इसके अलावा डॉ. सावित्री सिन्हा की पुस्तक "मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ" तथा डॉ. राजकुमारी कौल का शोध ग्रंथ "राजस्थान के राजघरानों की हिन्दी सेवा" भी इस संदर्भ में बहुत उपयोगी साबित हुए हैं।

10.2.1 महारानी सोन कुँवर

ये जयपुर राजवंश की रानी थीं। उनके पति तथा वे स्वयं वैष्णव संप्रदाय की प्रमुख धारा राधा वल्लभ संप्रदाय को मानते थे। इनका उपनाम सुवर्ण बेलि था। इनकी एक रचना का उल्लेख सुवर्ण बेलि की कविता के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में है। इस प्रति का हस्तलेखन सन् 1777 में हुआ था। इसमें 201 पद संग्रहीत हैं।

10.2.2 वृषभान कुँवरि महारानी

इनका तथा इनकी रचनाओं का उल्लेख भी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट की एक प्रति के परिशिष्ट में मिलता है। ये ओरछा राज्य की महारानी थीं। इनके रचे तीन ग्रंथ माने जाते हैं "भक्ति विरुदावली", "औरंग चंद्रिका" तथा "रासलीला"। इन ग्रंथों का रचनाकाल 1885 से लेकर 1904 तक माना जाता है।

10.2.3 ब्रजदासी रानी बाँकावत जी

ये जयपुर के लिवाण के राजा आनंदराम जी की पुत्री थीं। इनका जन्म संवत् 1760 के लगभग माना जाता है। कृष्णगढ़ के राजा राजसिंह जी के साथ इनका विवाह हुआ था। कृष्णगढ़, जिसे आज हम किशनगढ़ के नाम से जानते हैं। इस राजवंश के अनेक राजा स्वयं सुकवि और कवियों के आश्रयदाता रहे हैं, उस राजवंश की रानियाँ तथा कन्याएँ भी काव्य रचना में काफी निपुण रही हैं। रानी कृष्ण भक्त थीं। इन्होंने श्रीमद्भागवत का छंदोबद्ध अनुवाद किया है जो 'ब्रजदासी भागवत' के नाम से प्रसिद्ध है। यह अनुवाद दोहा, चौपाई, छंद में हुआ है। कृष्ण काव्य परंपरा में महारानी बाँकावत जी प्रथम स्त्री कवि हैं जिन्होंने पदों की मुक्त गेय प्रणाली को छोड़कर दोहों तथा चौपाई की प्रबंधात्मक शैली को अपनाया। श्रीमद्भागवत जैसे वृहत् ग्रंथ का अनुवाद उनके धैर्य, प्रतिभा तथा अध्यवसाय का प्रमाण है। ग्रंथ आरंभ करने से पूर्व सबसे पहले राधाकृष्ण की युगल जोड़ी की तथा गुरु की कृपा की आकांक्षा करते हुए वे कहती हैं -

श्री गुरुपद वंदन करूँ, प्रथमहि करूँ उछाह।
दंपति गुरु तिहुँ की कृपा, करो सकल मो चाह।।

बार-बार बंदन करौं, श्री वृषभान कुमारि।
जय जय श्री गोपाल जू, कीजै कृपा मुरारि।।

ब्रजदासी भागवत में भागवत की कथा का आद्योपांत वर्णन है और भक्तों की सुविधा के लिए उन्होंने यह अनुवाद किया। इस ग्रंथ में कहीं-कहीं ब्रजभाषा के साथ राजस्थानी के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है।

10.2.4 सुंदर कुँवरि

रानी बाँकावती और कृष्णगढ़ के राजा राजसिंह की पुत्री सुंदर कुँवरि का जन्म संवत् 1701 में हुआ। बाल्यावस्था में ही इनके पिता का निधन हो गया था जिसके कारण कृष्णगढ़ के राजघराने में अनेक पारिवारिक तथा राजनीतिक विवाद और कलह उत्पन्न हो गए। इस कारण इन्हें काफी परेशानियों का सामना करना पड़ा। सुंदर कुंवरि का विवाह काफी बाद में रूपनगर के खींची वंश के राजकुमार बलवंत सिंह के साथ हुआ। ससुराल में भी पति के सिंधिया सरदारों द्वारा पराजित होने के कारण बंदी बना लिए जाने के कारण इन्हें काफी कष्ट झेलने पड़े। ऐसा अनुमान किया जाता है कि पति की पराजय के बाद से सलेमाबाद चल गईं, जहाँ कृष्णगढ़ के राजकुल के निम्बार्क संप्रदाय का आराधना स्थल है। सुंदर कुंवरि में जन्मजात काव्य प्रतिभा थी। माँ और भाइयों की कृष्ण भक्ति और आस्था का सहारा पाकर यह और निखर उठी। इनकी रचनाओं का उल्लेख प्रायः सभी खोज ग्रंथों तथा राजस्थानी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में उपलब्ध है। इनके रचे ग्यारह ग्रंथ माने जाते हैं - नेह निधि (संवत् 1817), वृंदावन गोपी महात्म्य (संवत् 1830), संकेत सुगल (संवत् 1830), रस पुंज (संवत 1834), प्रेम संपुट (संवत 1845), सार संग्रह (संवत् 1845) रंगझर (संवत् 1845), गोपी महात्म्य (संवत् 1846), भावना प्रकाश (संवत् 1849), राम-रहस्य (संवत् 1853), पद तथा फुटकर कवित्त (संवत् 1853)।

इनके अधिकतर ग्रंथों का विषय राधा कृष्ण की लीलाएँ हैं। इनका जीवन भक्ति से सराबोर था, इसका प्रमाण उनकी कविता की बहुलता और उसकी उत्कृष्टता स्वयं है। उनकी भक्ति भावना निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुकूल थी। इनके गुरु श्री वृंदावन देव थे जो परशुराम जी की शिष्य परंपरा में से एक थे। कृष्णगढ़ के अंतर्गत रूपनगर से लगभग 6 मील की दूरी पर सलेमाबाद में इन परशुराम जी ने निम्बार्क संप्रदाय की गद्दी की स्थापना की थी। कृष्णगढ़ के राजकुल का यह आराधना स्थल रहा है। एक कविता में वे कहती हैं -

धाम अभिराम ग्राम नाम सुलेमाबाद,
कलि भवसागर में नवका तरन कौं।
गादी श्री परशुराम देव जू स्यापि जहाँ,
लोकदया हेरी त्रय ताप के हरन कौ
वृंदावन देव निज दासता की छाप मेरे,
भाल तहाँ दीनी हरी आश्रय करन कौ।
महा दीन हीन मति कीनी हों सनाथ नाथ
कोटि कोटि दंडवत् तिन के चरण कौं (संकेत सगुल)

निम्बार्क संप्रदाय की शिक्षा-दीक्षा के अनुसार राधिका जी के प्रति लेखिका की प्रेम भावना विशेष रूप से दृष्टव्य है। संप्रदाय युगल मूर्ति को महत्व देता है। सुंदर कुँवरि का काव्य शृंगार प्रधान है। बेशक मीरा के असाधारण व्यक्तित्व एवं कविता से इनके काव्य की कोई तुलना नहीं की जा सकती परंतु मीरा के बाद की महत्वपूर्ण कृष्ण भक्त कवयित्री के रूप में इनका नाम उल्लेखनीय है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इनके काव्य की प्रायः उपेक्षा दिखाई देती है जो साहित्य के इतिहासकारों का स्त्रियों द्वारा रचित काव्य के प्रति उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण का परिचायक है। भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों दृष्टियों से

कुँवरि जी का काव्य महत्वपूर्ण है। परिष्कृत भाषा, सरस अभिव्यक्ति, सुंदर कल्पनाएँ, रसानुभूति आदि काव्य का कोई ऐसा अंग नहीं है जो उनकी रचनाओं में न हो। उदारहण के लिए निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :

स्याम रूप सागर में नैन वार पारथ के,
नाचत तरंग अंग अंग रगमगी है।
गाजन गहर धुनि बाजन मधुर बैन,
नागिन अलक जुग सोधे सगमगी है।
भंवर त्रिमगताई पान पैं लुनाइ ता में,
मोती गणि जालन की जोति डगमगी है।
काम पौन प्रबल धुकान लोपी लाज तातें,
आज राधे लाल की जहाज जाएगी है।

यहाँ श्याम के रूप सागर में डगमगाती हुई राधा की लाज की नौका का वर्णन कवयित्री ने बहुत ही सजीवता से किया है। अनेक अलंकारों से सज्जित कर उन्होंने अपनी कविता को सरस और आकर्षक बनाया है। इनके द्वारा किया गया अपने उपास्य कृष्ण का सौन्दर्य वर्णन हमें मीरा के सौन्दर्य वर्णन की याद दिलाता है -

सुंदर श्याम मनोहर मूरति श्री बृजराज कुमार विहारी।
मोर पंखा सिर गुंज हरा बन माल गले का बंसिका धारी।
भूषण अंग के संग सुशोभित लोभित होय लखै ब्रजनारी।
राधिका वल्लभ मो दृग गेह बसौ नव नेह रहो मतवारी।

(संकेत सुगल)

प्रेम में पगी कवयित्री भक्ति भाव से भगवान कृष्ण की लीलाओं की अनुभूति करती है। वृंदावन में होने वाली लीलाओं में गोपियों को भाग लेने का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसके प्रति उसमें ईर्ष्या नहीं, आदर है। बहुत विनम्र वाणी में सुंदर कुँवरि ने राधा के मान का वर्णन "वृंदावन गोपी महात्म्य" में किया है। राधा एक कुंज में मान किए बैठी थी। घनश्याम से आज्ञा लेकर एक सखी उस कुंज में आई, राधा को समझाने लगी और कृष्ण के प्रेम का वर्णन कर उसे उनकी लगन का परिचय देने लगी। इस प्रकार "मानलीला" के सुंदर और भावपूर्ण वर्णन पढ़ने योग्य हैं। इसी प्रकार "दान लीला" प्रसंग का वर्णन "रस पुंज " में आया है।

संक्षेप में सुंदर कुँवरि की कविता भक्ति से सम्पन्न और हृदय की गहराई से परिपूर्ण है। लौकिक प्रेम से वंचित नारी हृदय कृष्ण के अलौकिक प्रेम में अपनी पूर्णता खोजता है। कृष्ण के प्रति उनकी भक्ति माधुर्य भाव की है। श्रृंगार वर्णन अत्यंत संयत और परिष्कृत है। जिस भगवद्भक्त घराने में उन्होंने जन्म लिया उसकी परंपरा को उन्होंने जीवित रखा। कृष्णगढ़ का राजघराना ही नहीं हिन्दी साहित्य की स्त्री काव्य परंपरा को भी उन पर गर्व है। मुंशी देवी प्रसाद की "महिला मृदुवाणी" में उनके अधिकांश काव्य संग्रहों से कविताएँ संग्रहीत हैं।

10.2.5 छत्रकुँवरि रानी

इनके बारे में यह जानकारी मिलती है कि यह रूपनगर के राजा सरदारसिंह जी की पुत्री थीं और कृष्णगढ़ महाराज सावंतसिंह जी (नागरी दास जी) की पोती थी। छत्रकुँवरि बाई भी सुंदर कुँवरि बाई की तरह सुलेमाबाद में श्री जी की शिष्या थीं। कृष्ण भक्त कवयित्री छत्रकुँवरि जी का लिखा एक ग्रंथ "प्रेमविनोद" मिलता है जिसका रचनाकाल सं. 1845 है। अपना परिचय "प्रेमविनोद" के अंतिम दोहों में इन्होंने इस प्रकार दिया है:

रूपनगर नृप राजसी, जिन सुत नागरीदास
तिन पुत्र जु सरदारसी, हौं तनया मैं तास।।
छत्रकुँवरि मम नाम है, कहिबे को जग माँहि।
प्रियासरनदासत्व तैं, हौं हित चूर सदाहिं।।
सरन सुलेमाबाद की, पाई तासु प्रताप।
आश्रय ह्वै जिन रहसि के बरन्यो ध्यान सजाप।।

छत्रकुँवरि बाई भी कृष्णगढ़ के राठौड़ राजवंश की कृष्ण भक्ति की काव्य परंपरा को आगे बढ़ाने वाली प्रतिभाशाली कवयित्री थीं। "प्रेम विनोद" में राधा-कृष्ण के जीवन के अनेक विनोदपूर्ण हास-परिहासों का चित्रण है। छत्रकुँवरि बाई कृष्ण पर अपनी भावनाएँ बिखरा देने वाली उन अनेक कवयित्रियों में से एक है जिनके काव्य में जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूतियाँ हैं। "प्रेम विनोद" में जीवन की स्पंदित भावनाएँ कल्पना के पुट तथा कलात्मक निपुणता के साथ बहुत ही सुंदर ढंग से व्यक्त हुई हैं जिससे वह एक सफल काव्यकृति बन गई है। उनकी राधा एक मुग्धा नायिका है और कृष्ण उस मुग्ध भावना को संबल प्रदान करने वाले नायक। एक उदाहरण देखिए जिसमें साँझी सजाने के लिए फूल चुनने के लिए सब गोपियाँ उद्यान में आई हुई हैं, सभी गोपिकाएँ अपने किशोर सुलभ उल्लास में मस्त फूल चुन रही हैं और राधा और कृष्ण प्रेम विवश हो आँखों ही आँखों में एक दूसरे के हृदय की बात कैसे कह देते हैं :

प्रेम भरी सब सुमन चुनत, जित तित साँझी हित।
ये दुहुँ बेबस अंग फिरत, निज गति मति मिश्रित।।
गरबाँही दीने कहू, इक टक लखन लुभाहिं।
पगपग द्वैद्वै पैड़ पै, थकित खरी रहि जाहिं।।
थकित खरी रहि जाहिं, दृगन दृग छुटे न छूटें।।
तन मन फूल अपार, दुहूँ फल लाह सु लूटें।।
नैनन नैनन सुगल, बैन सौं नहीं बनि आवै।।
उमड़न प्रेम समुद्र, थाह तिहिं नाहिन पावै।।

यहाँ अपलक नेत्रों से देखी हुई, दो-दो पगों के अंतर पर उल्लासजनित श्रम से थकी राधा का चित्र अनुपम है। खिले हुए फूलों के बीच में राधा का तन और मन दोनों उल्लसित हैं और वह उल्लास उनकी शारीरिक चेष्टाओं से व्यक्त हो रहा है। राधा और कृष्ण की पारस्परिक भावनाएँ प्रेम के आवेश में आलोड़ित हो वाणी द्वारा व्यक्त होने में असमर्थ हैं। नेत्र ही एक दूसरे के हृदय की बात कह देते हैं।

10.2.6 जाम सुता प्रताप कुँवरि (जाड़ेची प्रताप का)

ये गुजरात के जामनगर राज्य के जाम श्री रिड़मल जी की पुत्री थीं और जोधपुर महाराज तखतसिंह जी से इनका विवाह हुआ। इनका जन्म संवत् 1891 माना जाता है। प्रताप बा बहुत ही धर्मात्मा, उदार एवं लोकोपकारी प्रवृति की थीं। उन्होंने बहुत से लोक कल्याणकारी कार्य किए। जाड़ेची जी को कविता करने में विशेष रुचि थी। इनकी कविता का विषय भगवत भक्ति रहा है। यह चतुरभुज भगवान की परम भक्त थीं। इन्होंने स्तुति के पद और हरजस बनाए। "प्रताप कुँवरि पद रत्नावली" नामक संग्रह में इनकी कविताएँ मिलती हैं। इस संग्रह में कुछ कविताएँ छगन मिश्र और सुकवि श्याम की भी हैं। विभिन्न रागों में निबद्ध इनके हरजसों पर मीरा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। उदाहरण के लिए:

दरस मोहिं देहु चतुरभुज श्याम।
करि किरपा करुणानिधि मोरे सफल करो सब काम।।
पाव पलक बिसरूँ नहीं तुमको याद करूँ नित नाम।।
जाम सुता की माही बीनती आनि रहो उर धाम।।

इन्होंने अपने एक पद में अपनी पूर्ववर्ती महिला भक्तों का बहुत ही आदर से स्मरण किया है -

भज मन नंदनंदन गिरधारी।
सुखसागर करुणा को सागर। भगत बछल बनवारी।।
मीरा, करमा, कुबरी सबरी तारी गौतम नारी।।
वेद पुरानन में जस गायो। ध्यायें होवत प्यारी।।
जाम सुता को श्याम चतुर भुज। लेगो खबर हमारी।।

10.2.7 बाघेली विष्णु प्रसाद कुँवरि

इनके बारे में इतनी ही जानकारी मिलती है कि ये रीवां नरेश रघुवीर सिंह जी की पुत्री और जोधपुर महाराज किशोरसिंह जी की रानी थीं। भक्त कवयित्री विष्णु प्रसाद कुँवरि के रचे 3 ग्रंथों का उल्लेख मिलता है - अवध विलास, कृष्ण विलास और राधारास विलास। अवध विलास में रामचन्द्र जी के चरित्र तथा महिमा का वर्णन है। इसकी रचना दोहों तथा चौपाइयों में हुई है। कृष्ण विलास पद शैली में तथा राधारास विलास, गद्य तथा पद्य की संयुक्त शैली में रचित है। सरल-सहज शैली में रचित उनकी कविता की निम्न पंक्तियों में कृष्ण से मिलन की आतुरता की अभिव्यक्ति देखी जा सकती हैः

आली री जिया पिय बिन धीर धरै ना
वह ब्रज चंद छैल की मूरति
मम मन तें उतरे ना
... ...
विष्णु कुमारि हाय हरि कब
मिलि हैं मिटि हैं दुख सैना।।

10.2.8 प्रताप कुँवरि बाई

ये जोधपुर निवासी भाटी ठाकुर गोयंददास की पुत्री और जोधपुर महाराजा मानसिंह जी की रानी थीं। ये बहुत ही धार्मिक तथा पुण्यात्मा प्रवृत्ति की थी। अपने पति महाराज मानसिंह की मृत्यु के पश्चात् वैधव्य की निराशा ने भगवद् भक्ति की ओर उन्मुख कर दिया। इनकी कविता राम रस से भरी हुई है। इनके गुरु पूरणदास जी रामानुजी सम्प्रदाय के वैष्णव थे, अतः प्रताप कुँवरि पर भी राम के रूप का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इनके द्वारा रचे ग्रंथों की संख्या 15 है जिसमें से अधिकतर राम चरित्र को लेकर ही लिखे गए हैं। ज्ञान सागर, ज्ञान प्रकाश, रामचन्द्र महिमा, रामगुण सागर, रघुवर स्नेह लीला, राम सुजस पच्चीसी, रघुनाथ जी के कवित्त भजन पद हरजस आदि प्रमुख हैं। इन सब ग्रंथों का संग्रह कर महारानी रत्न कुँवरि जी ने इसे छपवाया। लेखिका के ग्रंथ ज्ञान सागर में उनके मन की स्थिति पर पड़ने वाली परिस्थितियों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है -

पति वियोग दुख भयो अपारा। सूनो लागत सकल संसारा।।
कछु न सुहाय नयन बहै नीरा। पति बिन कौन बंधावै धीरा।।
सुनि-सुनि कथा पुराण अपारा। सब झूठौ जान्यो संसारा।।
एक समै सपनेउ निस आयउ। रघुवर दरसन मोहि दिखायउ।।
मेघ बरन तन स्याम बिराजै। धनुष वाण प्रभु कर में छाजै।।

राम तथा राम भक्ति के अतिरिक्त संसार की नश्वरता, लौकिक भावनाओं की असारता, विकारी भावनाओं का विषम प्रभाव आदि भी उनकी कविता के विषय हैं। ज्ञानात्मक विवेचनाएँ भी इनके काव्य में हैं जो अधिकांशतः पद शैली में हैं। संत कवियों की मुक्तक शैली परंपरा का निर्वाह इनमें दिखाई देता है। उदाहरण के रूप में योग और प्रेम की होली का यह रूपक देखा जा सकता है-

होरी खेलन की रुत भारी।
नर तन पाय भजन कर हरि को और मेसर दिन चारी
अरे अब चेत अनारी।
ज्ञान गुलाल अबीर प्रेम करि, प्रीत तणी पिचकारी।
सांस उसांस राम रंग भर भर सुप्त सरी सी नारी।
खेल इन संग रचा री .....

10.2.9 रत्न कुँवरि बाई

ये जोधपुर के महाराजा प्रताप सिंह की रानी थीं और रामभक्त तथा राम काव्य की कवयित्री प्रताप कुँवरि की भतीजी थीं। यह भी भक्ति और प्रेम की कविता लिखती थीं तथा पद और हरजस बनाती थीं। इन्होंने राम का रूप वर्णन तथा महिमा का गान मुक्तक पदों में किया है। उदाहरण के लिए -

मेरो मन मोह्यो रंगीले राम।
उनकी छवि निरखत ही मेरो, बिसर गयो सब काम।
अट पहर मेरे हिरदे बिच, आन कियो निज धाम।
रतन कुँवर कहे उनको पल पल, ध्यान धरूँ नित साम।।

10.2.10 गिरिराज कुँवरि

ये भरतपुर की राजमाता थीं। इन्होंने भरतपुर में साहित्य का प्रचार-प्रसार किया और आयुर्वेद शिक्षा को भी प्रोत्साहन दिया। इनके लिखे दो ग्रंथ माने जाते हैं - श्री ब्रजराज विलास और पाक प्रकाश। इनकी कविता की भाषा परिमार्जित और परिष्कृत है। कृष्ण के प्रति उत्कृष्ट अनन्य भक्ति की अभिव्यंजना इनमें दिखाई देती है।

10.2.11 बाघेली रणछोड़ कुँवरि

ये रीवाँ नरेश विश्वनाथ सिंह के भाई बलभद्र सिंह की बेटी थीं जो जोधपुर नरेश तखत सिंह से ब्याही थीं। इनकी कविता का विषय कृष्ण प्रेम और भक्ति था। इन्होंने भागवत के गुणानुवाद के कवित्त और हरजस बनाए हैं। उदाहरण के लिए निम्न कवित्त देखा जा सकता है:

आभा तो निर्मल होय सूरज किरण उगे से।
चित्त तो प्रसन्न होय गोविन्द गुण गाए से।
पीतर तो उज्जल होय रेती के मांजे से
हृदय में जोति होय रेती के भांजे से
भजन में विछेप होय दुनिया की संगति से
आनंद अपार होय गोविन्द के ध्यान से।
मन को जगावो अरु गोविन्द के सरन आओ
तिरने के उपाव गोविन्द मन भाए से।

10.3 अन्य भक्त कवयित्रियाँ

राजघराने की इन भक्त कवयित्रियों के अलावा राजघरानों से जुड़ी कुछ अन्य भक्त कवयित्रियाँ भी हुई हैं जो पाटवी रानियाँ या कुँवरानियाँ तो नहीं रही हैं पर परदायतें आदि थीं।

10.3.1 बनीठनी जी

ये रसिक बिहारी नाम से भी जानी जाती हैं। कृष्णगढ़ महाराज नागरीदास जो स्वयं एक कृष्ण भक्त कवि थे उन्होंने रूढ़ियों तथा सामाजिक बंधनों को तोड़कर बनीठनी जी से प्रेम किया था। वे सदैव उनके साथ रहीं। बनीठनी जी के बचपन के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। नागरीदास जी ने राजनीतिक विषमताओं तथा पारिवारिक कलह के कारण वैराग्य धारण कर लिया था। बनीठनी जी तब भी उनके साथ ही थीं। वृंदावन में रसिक बिहारी बनीठनी जी के नाम की एक छतरी है जिससे यह प्रमाणित होता है कि वे नागरी दास जी के साथ वृंदावन में रही थीं और संवत् 1892 में वहीं उनकी मृत्यु हुई। इनके रचे पद आम कविकृत नाम से नागरीदासजी के रचना संग्रह "नागर समुच्चय" के अंत में छपे हैं। रसिक बिहारी जी राधाकृष्ण के युगल रूप की उपासिका थीं। कृष्ण और राधा के जन्म विषयक पदों से लेकर दोनों की क्रीड़ा, कुंजलीला, होली, हिंडोला, पनघट लीला आदि अनेक प्रसंगों पर इन्होंने पद लिखे हैं। राधा, कृष्ण की आनंद प्रसारिणी सिद्ध शक्ति हैं उसके जन्म और बालरूप का सुन्दर वर्णन इन्होंने किया है-

आज बरसाने मंगल गाई।
कुँवर लली को जन्म भयो है घर घर बजत बधाई।।
मोतिन चौक पुरावो गावो देहु असीस सुहाई।
रसिक बिहारी की यह जीवनि प्रगट भई सुखदाई।।

राधा और कृष्ण थोड़े बड़े हुए। नवल रंगीली राधा सखियों के साथ झूला झूल रही हैं, वायु के झकोरों से उड़ता हुआ अंचल उनकी लज्जा की रक्षा में असमर्थ है, युवक कृष्ण नेत्रों की कोर से इस सौन्दर्य का पान कर रहे हैं, जब अनायास ही गोपियों की दृष्टि उन पर पड़ जाती है और वे छिपने की चेष्टा करते हुए कुंज में चले जाते हैं -

नवल रंगीली सबै झुलावत गावत सखियाँ सारी।
फरहरात अंचल चल चंचल लाज ना जाते संभारी री।।
कुंजन ओट दुरे लखि देखत, प्रीतम रसिक बिहारी जी।

कृष्ण के इस चित्रण में स्वाभाविकता तथा सरलता है। बनीठनी जी की भक्ति माधुर्य भाव की है परंतु उसमें शृंगारिक रसमयता अधिक प्रकट हुई है। रसिक बिहारी जी की सारी कविता पद शैली में हुई है। उनके पदों में संगीत और लय है। ब्रजभाषा में रचित उनके पदों मे कहीं-कहीं राजस्थानी का प्रयोग भी मिलता है।

10.3.2 बीराँ

बीराँ नामक इस कृष्ण भक्त कवयित्री के बारे में अधिक जानकारी नहीं मिलती। जोधपुर निवासिनी इस कवयित्री के पद जोधपुर महाराज बखत सिंह के पदों के साथ मिलते हैं। जनश्रुतियों के आधार पर कहा जाता है कि संवत 1800 में सती होकर इन्होंने अपनी जीवन लीला समाप्त की थी। बीराँ के पदों में कृष्ण के रूप वर्णन तथा उनकी भक्ति भावना की अभिव्यंजना है। इनके पद विभिन्न रागों में निबद्ध हैं। राग विलावल में रचे इनके इस पद में कवयित्री के हृदय की स्वाभाविक किंतु मार्मिक अभिव्यक्ति देखी जा सकती है -

बस रहि मेरे प्राण मुरलिया बस रहि मेरे प्राण।
या मुरली के काम न घोल्यो उन ब्रजवासिन कान।
मुख की सौर लई सखियन मिल अमृत पीयो जान।
वृंदावन में रास रच्यो है सखियां राख्यो मान
धुनि सुनि कान भई मत वारी अंतर लग गयो ध्यान।
बीराँ कहे तुम बहुरि बजाओ नंद के लाल सुजान।

इनके पद लोकगीतों के अधिक निकट हैं। मीरा के पदों के समान इनके पदों में भी रे री आदि का प्रयोग मिलता है।

10.3.3 तुलछ्यराय

तुलछ्यराय जोधपुर के महाराजा मानसिंह जी की रक्षिता रानी थीं और तीजा भटियाणी कवयित्री प्रताप कुँवरि के सत्संग के काव्य रचना का अभ्यास किया था। इनकी कविता में राम का लीला रूप व्यक्त हुआ है। राम के प्रति माधुर्य भाव की भक्ति उनके इस पद में देखी जा सकती है:

सीताराम जी से खेलूँ मैं होरी। भर लूँ गुलाला की झोरी।।
सजकर आई जनक किशोरी। चहूँ बंधुन की जोरी।।
मीठे बोल सियाबर बोलत। सब सखियन की तोरी।।
हँसे हर सूँ कर जोरी।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मीरा के बाद राजघरानों से जुड़ी अनेक कवयित्रियाँ सामने आती हैं। इनमें से अधिकांश कवयित्रियाँ कृष्ण भक्त कवयित्रियाँ हैं और कुछ राम भक्त कवयित्रियाँ भी दिखाई देती हैं। यह एक सुखद आश्चर्य है कि अधिकांश कवयित्रियाँ राजस्थान के राजघरानों से जुड़ी है और उन्होंने भी मीरा की तरह राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा में ही अपनी कविता लिखी हैं। कवयित्रियों की यह परंपरा हमें आधुनिक काल के आरंभ तक दिखाई देती है। इन भक्त कवयित्रियों ने लोकगीतों की परंपरा से प्रभाव ग्रहण करते हुए अनेक हरजसों की रचना की है। इस काव्य परंपरा में बेशक मीरा का नामोल्लेख नहीं मिलता परंतु मीरा से ही उन्हें प्रेरणा प्राप्त हुई है, इतना निश्चित है। हमने पूर्व में ही इस बात का संकेत किया है कि राजसी वैभव का उपभोग करते हुए इन रानियों, राजकुमारियों को कृष्ण भक्ति की कविता करने की जरूरत क्यों पड़ी? इसका कारण यह है कि सामंती बंधनों, परंपराओं का निर्वाह करते हुए उन्हें जीवन में जो कुछ नहीं मिला। उसकी अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी काव्य रचना के माध्यम से की। मीरा की तरह विद्रोही चेतना की कवयित्री इनमें से कोई नहीं है। अपने सीमित क्षेत्र में रहते हुए इन भक्त कवयित्रियों ने जो कुछ लिखा है वह स्वागत योग्य है। इनकी भक्ति कविता में श्रृंगारिकता की प्रधानता है जिसका कारण समझ में आ सकता है। आदर्शों और संस्कारों में बँधा उनका जीवन भावनाओं और अनुभूतियों का प्यासा था। जीवन की क्रूरताओं ने उनके एक रस जीवन में नीरसता भर दी थी। कृष्ण की लीलाएँ, कृष्ण के चरित्र की कमनीयता उनके जीवन के ज्यादा निकट थी, राम के आदर्श चरित्र की तुलना में। यही कारण है कि उन्होंने कृष्ण भक्ति काव्य की ही अधिक रचना की।

10.4 साधारण जन समुदाय से आने वाली संत भक्त कवयित्रियाँ

साधारण जन समाज से आने वाली कवयित्रियों में तीनों तरह की कवयित्रियाँ शामिल हैं। कुछ कृष्ण भक्त कवयित्रियाँ हैं तो कुछ राम भक्ति धारा से जुड़ी हैं और कई संत

कवयित्रियाँ हैं। वैसे तो रीतिकाल तक आते-आते हिन्दी साहित्य में कुछ शृंगारिक रचना करने वाली स्त्री लेखिकाएँ भी दिखाई देती हैं और कुछ स्फुट काव्य जैसे नीति, पति सेवा और नारी धर्म आदि विषयों पर लिखने वाली लेखिकाएँ भी मिलती हैं। इन सबका भी अभी तक स्वतंत्र रूप से संकलन, विवेचन और अध्ययन नहीं हुआ है।

10.4.1 गंगा बाई (विट्ठलदास गिरधरन)

गंगा बाई श्री विट्ठलदास की शिष्या थीं। मिश्रबंधु विनोद में इनके नाम का उल्लेख मिलता है। गंगाबाई के रचनाकाल के विषय में कोई निश्चित उल्लेख नहीं मिलता परंतु विट्ठलनाथ जी की शिष्या होने के कारण उनका समय संवत् 1607 के लगभग होना निश्चित है, क्योंकि विट्ठलनाथ का समय इसी के आस पास पड़ता है। गंगाबाई की जीवनी के विषय में बस इतना ही मिलता है कि इनका जन्म क्षत्रिय कुल में हुआ था तथा ये महावन नामक स्थान में रहती थीं। विट्ठलदास के शिष्यों द्वारा रचित पदों के संग्रहों में इनके पद "विट्ठल गिरधरन" नाम से संग्रहीत हैं। गंगा बाई द्वारा रचित एक स्वतंत्र ग्रंथ गंगाबाई के पद नाम से भी प्राप्त हुआ है। इस ग्रंथ से यह प्रमाणित होता है कि इन्होंने कृष्ण के बालरूप की उपासना की है तथा बाल लीला के ही गीत गाए हैं।

कृष्ण काव्य धारा की लेखिकाओं में गंगाबाई ने ही वात्सल्य भाव को प्रधान रूप में ग्रहण किया है। अधिकांश कवयित्रियों ने कृष्ण के प्रति शृंगारिक माधुर्य भावनाओं को ही व्यक्त किया है। कृष्ण के बाल रूप के वर्णन में मातृ हृदय के उल्लास की अभिव्यक्ति गंगा बाई की कविता में ही मिलती है। कृष्ण जन्म पर यशोदा का उल्लास इन सीधी सादी पंक्तियों में सजीव हो उठा है -

रानी जू सुख पायो सुत जाय।
बड़े गोप वधून की रानी हँसि हँसि लागत पाय।।
बैठी महरि गोद लिए ढोटा आछी सेज बिछाय।
बोलि लिए ब्रजराज सबनि मिलि यह सूख देखी आय।।
जेई जेई बदन बदी तुम हमसों ते सब देहु चुकाइ।
ताते लेहु चौगुनी हम पै कहत जाई मुसकाइ।।
हम तो मुदित भये सुख पायो चिरजीवो दोउ भाइ।
श्री बिट्ठल गिरधरन कहत ये बाबा तुम माइ।।

यहाँ यह रेखांकित करने की आवश्यकता है कि मातृत्वजन्य उल्लास के प्रति ये एक स्त्री की सूक्ष्मताओं के उद्गार हैं। ऐसे प्रसंग की रचनाओं पर वात्सल्य क्षेत्र के अधिपति माने जाने वाले सूर की ही दृष्टि पड़ी है। गंगा बाई के काव्य के विषयों तथा नित्य लीला आदि के वर्णनों से यह प्रमाणित होता है कि बिट्ठल नाथ जी शिष्या होने के कारण उन पर पुष्टि मार्ग के सिद्धांतों का प्रभाव है। स्त्री होने के कारण उन्होंने वात्सल्य तथा माधुर्य भाव को ही अधिक अपनाया है। पुष्टिमार्ग के दार्शनिक सिद्धांतों की गंभीरता से उनका कितना परिचय था यह कहना कठिन है क्योंकि उनके उपलब्ध पदों से इस प्रकार का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। उनकी संपूर्ण रचनाओं के प्रकाश में आने पर ही उनके योगदान का मूल्यांकन किया जाना संभव है।

10.4.2 ताज

कृष्ण भक्त कवयित्रियों की परंपरा में ताज का महत्वपूर्ण स्थान है। धर्म तथा जाति की सीमाओं को तोड़कर जिस प्रकार रसखान ने कृष्ण के चरणों में ही अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था उसी प्रकार ताज ने मध्यकालीन धार्मिक संकीर्णताओं तथा सामाजिक बंधनों

का अतिक्रमण कर कृष्ण को अपना आराध्य मानकर उसकी भक्ति की। ताज के जीवन के बारे में कोई प्रामाणिक जानकारी हिन्दी साहित्य के ग्रंथों में नहीं मिलती। इनका जन्म, रचनाकाल, मृत्यु तिथि सब कुछ संदिग्ध है। "शिवसिंह सरोज" के अनुसार इनका जन्म संवत् 1652 है तो मुंशी देवी प्रसाद ने सं. 1700 के लगभग इनका समय माना है। सिहारे के गोविंद गिल्ला भाई हिन्दी के लेखक रहे हैं। उन्होंने लिखा हे कि ताज के सैकड़ों छंद उनके पास एकत्रित हैं। उनके निम्न पत्र के आधार पर ताज के जीवन के विषय में अनुमान किया जा सकता है :

"ताज नाम की एक मुसलमान स्त्री कवि करौली ग्राम में हो गई है। वह नहा-धोकर मंदिर में भगवान का नित्य प्रति दर्शन करती थी, इसके पश्चात् भोजन ग्रहण करती थी। किन्तु एक दिन वैष्णवों ने उसे विधर्मिणी समझकर मंदिर में दर्शन करने से रोक दिया। ताज उस दिन उपवास करके मंदिर के आँगन में ही बैठी रह गई और कृष्ण का नाम जप करती रही। जब रात हो गई तब ठाकुर जी स्वयं मनुष्य रूप धारण कर भोजन का थाल लेकर ताज के पास आए और कहने लगे तूने आज जरा-सा भी प्रसाद नहीं खाया, ले अब इसे खा। ..... प्रातःकाल जब सब वैष्णव आए, तो ताज ने सारी बातें उनसे कह सुनाईं। ताज के सामने भोजन का थाल देखकर वे अत्यंत चकित हुए। वे सभी वैष्णव ताज के पैरों पर गिर पड़े और क्षमा प्रार्थना करने लगे। तब से ताज प्रतिदिन भगवान के दर्शन करके प्रसाद ग्रहण करने लगी। पहले ताज मंदिर में जाकर ठाकुर जी का दर्शन कर आती थी तब और दूसरे वैष्णव दर्शन करने जाते थे।

ताज परम वैष्णव और महा भगवद्भक्त थी। ठाकुर जी की कृपा से वह भक्त हो गई। जब मैं करौली गया था तब अनेक वैष्णवों के मुँह से मैंने यह बात सुनी थी, वहीं मैंने इनकी अनेक कविताएँ भी सुनीं। उसी समय इनकी कितनी ही कविताएँ मैंने लिख ली थीं। ताज की दो सौ कविता मेरे हाथ की लिखी हुई मेरे निजी पुस्तकालय में हैं।"

-गोविन्द गिल्ला भावे
सिहोर
भाव नगर राज्य

इस प्रकार यह माना जा सकता है कि ताज का निवास स्थान करौली ग्राम में था। मुसलमान घर में जन्म लेकर भी वे परम वैष्णव थीं और कृष्ण की अनन्य भक्त। उनकी कविताओं के साक्ष्य के आधार पर एवं यत्र-तत्र बिखरी ताज विषयक सामग्री के अनुसार यह अनुमान किया जाता है कि वे पंजाब की रहने वाली थीं। अपनी कहानी वे स्वयं इन शब्दों में कहती हैं -

सुनो दिलजानी, मेरे दिल की कहानी,
तुम दस्त की बिकानी, बदनामी भी सहूँगी मैं।।
देव पूजा ठानी, मैं निवाज कहूँ भुलानी,
तजे कलमा कुरान साढ़े गुनन गहूँगी मैं।।
स्यामला सालोना सिर ताज कुल्ले दिए
तेरे नेह दाग में निदाघ ह्वै दहूँगी मैं।।
नंद के कुमार कुरबान तोनी सूरत पै,
त्वाढ़ नाल प्यारे हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं।।

ताज की भक्तिभावना का आधार कृष्ण का मार्धुयमय विराट रूप है। उपास्य कृष्ण के प्रति उनकी भक्ति भावना में एकनिष्ठ समर्पण भाव है तथा उनकी कविता में आनंद और उल्लास है, उच्छृंखल रसिकता नहीं। कृष्ण के प्रति भक्तिभावना के अतिरिक्त हिन्दू धर्म

में प्रचलित पौराणिक कथाएँ उनके प्रसंगानुकूल शुद्ध तथा यथातथ्य वर्णनों को देखकर आश्चर्य होता है कि ताज को रामायण, महाभारत आदि की पूर्ण जानकारी थी। पतितों का उद्धार करने वाले भक्त वत्सल अवतारी कृष्ण ताज की आस्था के पात्र हैं। कहती हैं -

ध्रुव से प्रहलाद गज ग्राह से अहिल्या देवि,
स्योरी और गीध और विभीषन जिन तारे हैं।
पापी अजामिल सूर तुलसी रैदास कहूँ,
नानक मलूक ताज हरि ही के प्यारे हैं।।
धनी नामदेव दादू सदना कसाई जान,
गनिका, कबीर, मीरा, सेन उर धारे हैं।
जगत को जीवन तहान बीच नाम सुन्यो,
राधा के वल्लभ कृष्ण वल्लभ हमारे हैं।।

अपनी इस कविता में उन्होंने अनेक भक्त कवियों के साथ मीरा का भी स्मरण किया है। इससे यह प्रतीत होता है उनको मीरा की कृष्ण भक्ति और कविता के बारे में जानकारी थी। ताज के माधुर्य भाव में लीला, रूप तथा प्रेम का सामंजस्य है। मीरा की भाँति प्रेम पंथ की गहनता और गंभीरता से भी वे परिचित हैं। जब वे कहती हैं -

मुस्क्यानि तिहारी जो मैंने लखी,
लखि के मन में अति नेह जुटानो।
जो तुम चाहत एक बिसे,
हम एक के बीस बिसे तेहि मानो।।
राह बड़ी है जो प्रेम के पंथ की,
चातुर होय सोई चित आनो।
जीवन ताज कहे जग में,
तुक चारहि आदि के अक्षर जानो।।

तो उनकी ये पंक्तियाँ मीरा के प्रेम की याद दिलाती हैं। ताज की कविता की एक अन्य विशेषता है कर्मकांडों और आडंबरों का विरोध। वे कहती हैं कि किसी को बद्रीनाथ जगन्नाथपुरी के दर्शन पर विश्वास है तो कोई काशी या प्रयाग तीर्थ पर भरोसा करता है लेकिन वे कृष्ण के प्रति अपने एकनिष्ठ और दृढ़ प्रेम भाव को व्यक्त करती हैं-

काहू को भरोसो ताज पुष्कर में दान दिए।
मोको तो भरोसो एक नंद जी के लाल को।।

इस प्रकार कृष्ण भक्त कवयित्रियों में ताज का प्रमुख स्थान है। मीरा के बाद वे एक महत्वपूर्ण भक्त कवयित्री के रूप में हमारे सामने आती हैं। भाव, भाषा, छंद, अलंकार शैली सभी दृष्टियों से उनका काव्य उत्कृष्ट है। पद शैली के बदले उन्होंने कवित्त और सवैया छंद को अपनाया। अपनी कविता को सुंदर बनाने में उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग भी किया है।

10.4.3 बीबी रत्न कुँवरि

बीबी रत्न कुँवरि जी मुर्शिदाबाद के जगत सेठ के घराने में पैदा हुईं। इनके नाम का उल्लेख अधिकांश खोज रिपोर्टों में मिलता है। इन्होंने संवत् 1844 में प्रेम रत्न नामक खंड काव्य की रचना की। राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद उनके पोते थे। उन्होंने प्रेम रत्न ग्रंथ के विज्ञापन में अपनी दादी के गुणों का बखान करते हुए लिखा है -

वह संस्कृत में बड़ी पंडिता थीं, छहों शास्त्रों की वेत्ता। फ़ारसी भाषा भी इतनी जानती थीं कि मौलाना रूम की मसनवी और दीवान शम्स तबरेज जब कभी हमारे पिता पढ़कर सुनाते तो उनका संपूर्ण आशय समझ लेती थीं। गाने–बजाने में अत्यंत निपुण थीं। चिकित्सा यूनानी और हिन्दुस्तानी दोनों प्रकार की जानती थीं। योगाभ्यास में परिपक्व थीं। संयम, नियम और वृत्ति ऋषियों और मुनियों की सी थी। सत्तर वर्ष की अवस्था में भी बाल काले थे तथा आँखों में ज्योति बालकों की–सी थी, वह हमारी दादी थीं। इससे हमको उनकी प्रशंसा अधिक लिखने में लाज आती है, परन्तु जो साधु, संत और पंडित लोग उस समय के उनके जानने वाले काशी में वर्तमान हैं, वे उनके गुणों की यथाविधि स्मरण करते हैं।....''

रत्न कुँवरि ने प्रेम रत्न ग्रंथ में भागवत के दशम स्कंध के बयासीवें अध्याय की कथा को आधार बनाया। कहानी यद्यपि भागवत से ली गई है परंतु अपनी मौलिक कल्पनाओं और प्रासंगिक वर्णनों के माध्यम से रत्न कुँवरि जी ने सर्वथा नए और मनोरम खंड काव्य की रचना की है। इसमें कृष्ण के लीला प्रधान रूप का वर्णन है। द्वारिका वासी कृष्ण का राजनीति में उलझा हृदय ब्रजवासियों के प्रेम की पुनः अनुभूति के लिए आकुल हो उठता है, उन्हीं दिनों सूर्यग्रहण पड़ता है। सूर्यग्रहण के अवसर पर इधर से द्वारिकाधीश कृष्ण अपनी सुसज्जित सेना तथा द्वारिका वासियों को साथ लेकर कुरुक्षेत्र स्नान के लिए प्रस्थान करते हैं, उधर से ब्रजवासी भी अपनी वियोग ज्वाला को शीतल करने कुरुक्षेत्र आते हैं। एक ब्रजवासी द्वारा कृष्ण के वहाँ आने का समाचार फैला दिया जाता है और अंत में कृष्ण, नंद और यशोदा तथा राधिका से मिलते हैं। पिछली स्मृतियाँ सजीव हो उठती हैं और प्रेम के उल्लास में प्रसन्न नंद-यशोदा, गोप-गोपियाँ राधा और कृष्ण की आँखों में आँसुओं का प्रवाह उमड़ पड़ता है। कुरुक्षेत्र में छह मास रहकर कृष्ण गोपियों के जीवन में फिर से उत्साह उत्पन्न कर उनकी विह्वलता को सांत्वना और आश्वासन देकर द्वारिका लौट जाते हैं और ब्रजवासी भी ब्रज की ओर चले जाते हैं। प्रेम रत्न के आरंभ में परम पुरुष परमात्मा तथा गुरु के चरणों की वंदना की गई है। वंदना के बाद कृष्ण के अनेक अवतारों की गरिमा का वर्णन है। कृष्ण की भक्त वत्सलता का स्मरण दिलाने के बाद कृष्ण की लीला की कहानी आरंभ होती है। भागवत की कथा में कृष्ण और बलराम केवल उत्सुकतावश कुरुक्षेत्र आना चाहते हैं जबकि "प्रेम रत्न" के कृष्ण एक पंथ के द्वारा दो कार्यों की पूर्ति करते हैं। खंड काव्य के वातावरण निर्माण में भी कवयित्री सफल रही हैं। छंद और शैली तथा विषय निर्वाह में वे कृष्ण काव्यों की अपेक्षा राम काव्य रचयिताओं के ज्यादा समीप दिखाई देती हैं। उदाहरण के लिए श्रीकृष्ण के कुरुक्षेत्र में आने का समाचार जब यशोदा सुनती हैं तो आनंद विह्वल हो उठती हैं-

सुनतहि यशुमति ह्वै गहे बौरी। ता ग्वालहि पूछति उठि दौरी।।
आए श्याम सत्य कहु भैया? मोहि दिखावहु तनक कन्हैया।।
निज लालन को कंठ लगाऊँ। दुसह बिरह को ताप नसाऊँ।।
कह अब गहर करत बेकाजहि। भेंटहु बेगि सकल ब्रजराजहिं।।

खंड काव्य की दृष्टि से ग्रंथ सफल है। भक्त कवयित्रियों के लिखे खंड काव्यों की संख्या काफी कम है इस दृष्टि से रत्नकुँवरि जी की यह बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है। कृष्णकाव्य की परम्परागत पदबद्ध काव्य रचना का अनुसरण न करके उन्होंने "प्रेम रत्न" के माध्यम से एक मौलिक और नवीन प्रयोग किया।

10.4.4 चन्द्रसखी

चन्द्रसखी के समय, जीवन, रचनाकाल मृत्यु आदि के बारे में जानकारी नहीं मिलती। श्री नरोत्तमदास स्वामी ने **चन्द्रसखी रा भजन** नाम से संग्रह किया जो नवयुग ग्रंथ कुटीर से प्रकाशित हुआ। संगीत की प्रधानता के कारण इनके भजनों का महत्व लोकगीतों के रूप में अधिक है। यह एक आश्चर्य की बात है कि चन्द्रसखी के भजनों के अंतर्गत कई

भजन ऐसे हैं जिनका उल्लेख मीरा के भजनों के रूप में किया जाता है। ऐसा लगता है कि मीरा के काव्य का इन पर बहुत अधिक प्रभाव रहा है। राजस्थान में आज भी महिलाएँ चन्द्रसखी के भजन गाती हैं।

मधुर अलीः रचनाकाल की दृष्टि से मधुर अली को राम काव्य धारा की प्रारंभिक कवयित्री माना जा सकता है। इनका जन्म सं. 1615 में हुआ था और ये ओरछा के राजा मधुकर शाह के आश्रय में रहती थी। वैभव विलास के वातावरण में रहते हुए भी शृंगारिक काव्य की रचना न करके वे राम भक्ति की ओर प्रेरित हुईं। केवल गौरीशंकर द्विवेदी की पुस्तक बुंदेल वैभव के अलावा इनका उल्लेख किसी खोज रिपोर्ट में नहीं मिलता है। इनके रचे दो ग्रंथ माने जाते हैं - **राम चरित्र** और **गनेसदेवलीला**। दोनों ग्रंथ अप्राप्य हैं, इसलिए इनके काव्य के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

10.4.5 प्रेम सखी

प्रेम सखी का उल्लेख बुंदेल वैभव और नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में मिलता है। इनके जीवन चरित के बारे में प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। अनुमानतः इनका जन्म सं. 1800 एवं रचनाकाल 1840 है। कई हस्तलिखित ग्रंथों में इनकी कविताएँ बिखरी हुई हैं। कई इतिहासकारों ने विशेषकर रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें सखी संप्रदाय का पुरुष भक्त माना है। परंतु गौरीशंकर द्विवेदी की यह स्पष्ट धारणा है कि वे स्त्री थीं। क्योंकि बुंदेल वैभव में उनका उल्लेख बुंदेल खंड की कवयित्रियों में ही किया गया है। प्रेम सखी राम काव्य की श्रेष्ठ कवयित्री हैं। इनके पदों को विषय के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - 1. नख शिख वर्णन के पद जिसमें राम के सौन्दर्य का वर्णन है 2. स्फुट विषयों पर लिखे गए पद, सवैये तथा कवित्त। प्रेम सखी के उपास्य राम हैं। राम के प्रति उनकी भक्ति भावना में आस्था और श्रद्धा के साथ माधुर्य भाव भी है। राम के रूप और महिमा वर्णन में ही काव्योक्ति गुण विद्यमान नहीं बल्कि स्फुट विषयों पर रचित पदों में भी सुकुमार कल्पना और सुंदर अभिव्यंजना दिखाई देती है -

छोटे-छोटे कैसे तृण अंकुरित भूमि भए,
जहाँ-तहाँ फैली इन्द्र वधू वसुधान में।
लहक-लहक सीरी डोलत बयार और,
बोलत मयूर माते सघन लतान में।।
घुरवा पुकारें पिक, दादुर पुकारे बक,
बांधि कै कतारें उड़े कारे बदरान में।
अंस भुज डारे खरे सरजू किनारे प्रेम,
सखी वारि डारे देखि पावस वितान में।।

पावस द्वारा उल्लसित प्रकृति के इस वातावरण निर्माण में प्रेम सखी की चित्रण क्षमता की योग्यता देखा जा सकती है।

निर्गुण काव्यधारा में सूफी मत से संबंधित एक भी स्त्री भक्त कवयित्री का उल्लेख नहीं मिलता केवल संत काव्य में ही कुछ स्त्रियों की रचनाएँ प्राप्त होती हैं। संत कवयित्रियों की रचनाएँ उपदेशात्मकता की दृष्टि से सुंदर और सफल हैं। संत कवयित्री के रूप में सबसे पहला नाम मुक्ताबाई का आता है जिन्होंने मराठी और हिन्दी दोनों में कविता की है। मुक्ताबाई का उल्लेख मीरा और भारतीय भक्त कवयित्रियाँ नामक इकाई में किया जा चुका है। हिन्दी साहित्य के प्रायः सभी इतिहासों में संत काव्य के अंतर्गत सहजोबाई और दयाबाई के नामों का उल्लेख मिलता है।

10.4.6 उमा

उमा का उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट में मिलता है और उनके पद एक हस्तलिखित ग्रंथ में संकलित हैं। उनके जीवन और रचनाकाल के विषय

में कोई जानकारी नहीं मिलती। उमा किसी संत की शिष्या रही होंगी। इनके पदों में आए हुए सतगुरु और सैया संबोधन गुरु और निराकार ब्रह्म के प्रति संबोधन प्रतीत होते हैं। उमा को योग और ज्ञान की काफी जानकारी थी। पंचतत्व से निर्मित शरीर रूपी उद्यान में उन्होंने प्रेम की पिचकारी और ज्ञान की गुलाल से जो फाग खेला है उसमें उनकी तीव्र अनुभूति और कल्पना दोनों का सामंजस्य दिखाई देता है -

ऐसे फाग खेले राम राय।
सुरत सुहागण सम्मुख आय।।
पंच तत को बन्यो है बाग।
जामें सामन्त सहेली रमत फाग।।
जहँ राम झरोखे बैठे आय।
प्रेम पसारी प्यारी लगाय।।
जहाँ सब जनन को बन्यो है, ज्ञान-गुलाल लियो हाथ।
केसर गारो जाय।।

कबीर की तरह इनके यहाँ भी राम शब्द का प्रयोग दशरथ पुत्र राम के लिए नहीं बल्कि निर्गुण ब्रह्म के लिए हुआ है। इनकी काव्य रचना देखकर ऐसा लगता है कि ज्ञान मार्ग के साथ अपने हृदय की नारी सुलभ कोमलता और सरलता का समन्वय न कर पाने के कारण ही उन्होंने अमूर्त ब्रह्म और साकार राम का तादात्म्य कर दिया है।

10.4.7 सहजो बाई

प्रमुख संत कवयित्री सहजोबाई, चरणदासी संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी चरणदास की शिष्या थीं। इनका जीवनकाल अनुमानतः सं. 1740 से सं.1820 तक माना जाता है। अपने ग्रंथ "सहज प्रकाश" में जो आत्मपरिचय दिया गया उससे कुछ जानकारी मिलती है कि इनका जन्म भी अपने गुरु चरणदास की भाँति ढूसर वैश्य कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम हरि प्रसाद था। सहज प्रकाश में यह भी लिखा हुआ है कि सं. 1800 के फागुन मास की अष्टमी तिथि को उन्होंने उसकी रचना प्रारंभ की थी -

हरिप्रसाद की सुता, नाम सहजो है बाई।
ढूसर कुल में जन्म, सदा गुरु चरण सहाई।।
चरणदास गुरुदेव भेव मोहि आगम बतायो।
योग मुक्ति सूं दुर्लभ सुलभ करि दीप दिखायो।।

सहजोबाई ने लिखा है कि गुरु का गुणगान करने बैठी थी कुछ दोहे चौपाई रचे थे, पर धीरे-धीरे सहज में ही वह एक पोथी बन गई -

फागुन महिना अटमी, शुक्ल पक्ष बुधवार।
संवत अठारै सै हुता, सहजो किया विचार।।
गुरु स्तुति के करन को, बाढो अधिक हुलास।
होते-होते ह्वै गई, पोथी सहज प्रकाश।।

सहजोबाई आजीवन ब्रह्मचारी रहीं। वे अपनी गुरु बहिन दया बाई के साथ दिल्ली में स्वामी चरणदास की सेवा में जीवन भर निमग्न रहीं। उनका देहावसान दिल्ली में ही हुआ। सहजो बाई उच्च कोटि की साधिका थीं। संत काव्यधारा में उनका स्थान विशेष उल्लेखनीय है। उनके काव्य में गुरु भक्ति पर विशेष बल है। प्रभु प्रेम की महिमा के वर्णन के साथ सहजोबाई की कविता में स्त्री हृदय की कोमलता और उदारता मिलती है। गुरु की महिमा का गुणगान करते हुए वे कहती हैं -

राम तजू पै गुरु न बिसारूँ -
गुरु के सम हरि को न निहारूँ
हरि ने जनम दियो गम माहीं
गुरु ने आवागमन छुटाहीं

इतना ही नहीं कबीर की तरह गुरु के बारे में वे कहती हैं -

सब परबत स्याही करूँ, घोलूँ समुंदर जाय।
धरती का कागद करूँ गुरु अस्तुति ना समाय।।

निर्गुण संत की साधना में सत्संग तथा आध्यात्मिक वातावरण को जरूरी माना गया है। साधना में उन व्यक्तियों से संपर्क आवश्यक है जिन्हें इस क्षेत्र में सफलता मिल चुकी है। ऐसे साधु व्यक्ति का वर्णन सभी संत कवियों ने किया है। सहजो बाई कहती हैं -

जब चेतै तब ही भला मोह नींद सूँ जाग।
साधू की संगति मिलै, सहजो ऊँचै भाग।।

सहजो के काव्य में गुरु भक्ति, साधु महिमा वैराग उपजावन, नाम स्मरण सांसारिक विरक्ति, प्रेम, निर्गुण-सगुण आदि विषय मिलते हैं। भाषा इनकी सरल, सहज और प्रभावशाली है। सहजो ने प्रायः दोहा, चौपाई और कुंडलिया छंद में ही काव्य रचना की है। प्रभु प्रेम में दीवाने मनुष्य की दशा का वर्णन सहजो ने अनुभूति की जिस गहराई से किया है वह मीरा की मार्मिक अनुभूति की याद दिलाता है वे कहती हैं -

प्रेम दिवाने जो भए सहजो डगमग देह।
पाँव परे कितके किंती हरि सम्हारि जब लैंह।।
मन में तो आनंद है, तनु बौरा सब अंग।
ना काहू के संग हैं सहजो ना कोई संग।।

सगुण और निर्गुण परमात्मा की एकता के बारे में भी सहजो मीरा जैसा ही भाव रखती हैं। उन्होंने लिखा है -

सहजो हरि बहुरंग है, वही प्रकट वही गूप।
जल पाले में भेद ना ज्यों सूरज अरू धूप।।

10.4.8 दया बाई

दयाबाई भी चरणदास की शिष्या थीं और वे भी दिल्ली में स्वामी चरणदास की सेवा में रहती थीं। पीताम्बरदास बड़थ्वाल ने इन्हें सहजो की चचेरी बहिन माना है पर इसके स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते। दयाबाई भी अपनी गुरु बहिन सहजो की तरह ढूसर वैश्य कुल की थीं। दयाबाई का एक अन्य नाम दयाकुँवरि भी मिलता है। इनकी दो रचनाएँ मिलती हैं - दयाबोध और विनयमालिका। विनयमालिका के बारे में यह भी कहा जाता है कि यह किसी दयादास की रचना थी। जो भी हो इसके विषय में स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। दयाबोध से पता चलता है उसकी रचना दयाबाई ने सं. 1818 में की थी। दयाबाई की रचनाओं में भी अन्य संतों की तरह गुरु भक्ति के अतिरिक्त प्रेम, वैराग्य, साधु महिमा, सुमिरन, अजपाजाप आदि विषयों का वर्णन मिलता है।

हम सब जानते हैं कि संत मत में गुरु का विशिष्ट स्थान है। गुरु ही सांसारिक अंधकूप में डूबते व्यक्ति का उद्धार करता है। दयाबाई कहती हैं -

अंधकूप जग में पड़ी, दया करम बस आय।
बूड़त लई निकासि करी, गुरु गुन ज्ञान गहाय।।

सहजो बाई के प्रसंग में प्रेम की चर्चा की जा चुकी है। दयाबाई के यहाँ भी भगवत् प्रेम की चरम अनुभूति की विह्वलता, मादकता तथा भावात्मकता मिलती है। उनमें विरहानुभूति की विविध स्थितियों के चित्रण में सजीवता दिखाई देती है। मिलन की प्रतीक्षा का यह चित्रण काफी मार्मिक है -

काग उड़ावत थके कर नैन निहरात बाट।
प्रेम सिंध में पर्‌यो मन, ना निकसन को बाट।।

10.5 सारांश

भक्ति काव्यधारा में मीरा के बाद भक्त कवत्रियों की सुदीर्घ और समृद्ध परंपरा रही है। इस परंपरा में भक्त कवयित्रियों की शृंखला में राजघराने से संबंधित भक्त कवयित्रियों और साधारण जनसमुदायों के बीच से आईं भक्त कवयित्रियाँ आती है।

मीरा परवर्ती हिन्दी भक्ति काव्यधारा में राम भक्त और कृष्ण भक्त कवयित्रियाँ आती हैं। सन् 1777 में महारानी सोन कुँवर से लेकर वृषभान कुँवरि महारानी (1885), ब्रजदासी रानी बाँकावत जी, सुंदर कुँवरि, छत्रकुँवरि रानी, जाम सुता प्रताप कुँवरि, बाघेली विष्णु प्रसाद कुँवरि, प्रताप कुँवरि, रत्न कुँवरि बाई, गिरिराज कुँवरि बाघेली, विष्णु प्रसाद कुँवरि, बाघेली रणछोड़ कुँवरि और अन्य भक्त कवयित्रियों में बनीठनीजी, बीराँ, तुलछयराय आदि आती हैं। इन्होंने कृष्ण भक्ति की कविताएँ इसलिए लिखीं क्योंकि सामंती बंधनों, परंपराओं का निर्वाह करते हुए उन्हें जीवन में जो कुछ नहीं मिला, उसी की अभिव्यक्ति उन्होंने अपने काव्य में की। मीरा की तरह इनकी कविताओं में विद्रोही चेतना तो नहीं थी किन्तु इनकी कविताओं में शृंगारिकता की प्रधानता रही है। इन्होंने अपनी कविताओं में आदर्शों और संस्कारों से बँधे जीवन की भावनाओं और अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है। इनके काव्य में राम के आदर्श चरित्र की तुलना में कृष्ण लीलाएँ और कृष्ण चरित्र के जीवन से अधिक निकटता दृष्टिगत होती है।

साधारण जन समुदाय से आने वाली संत भक्त कवयित्रियों में गंगा बाई, ताज, बीबी रत्न कुँवरि, चन्द्रसखी, प्रेम सखी, उमा, सहजो बाई और दया बाई आदि कवयित्रियों ने अपनी कृष्ण भक्ति कविताएँ लिखीं।

इन कवयित्रियों में हिन्दू स्त्रियों के अलावा मुस्लिम परिवारों की स्त्रियों ने भी कृष्ण भक्ति भावना से ओतप्रोत कविताओं की रचना की।

10.6 अभ्यास प्रश्न

1. राजघराने से संबंधित भक्त कवयित्रियों के नाम बताइए और उनकी भक्ति की विशेषता बताइए।
2. राजघराने से संबंधित भक्त कवयित्रियों की कविताओं और साधारण जन समुदाय से आने वाली संत भक्त कवयित्रियों की कविताओं में क्या अंतर है? स्पष्ट कीजिए।
3. भक्त कवयित्रियों और संत भक्त कवयित्रियों के नाम बताइए और दोनों की कविताओं के विषयपरक अंतर को स्पष्ट कीजिए।
4. पाँच राजघराने की भक्त कवयित्रियों के नाम तथा उनके ग्रंथों के नाम बताइए।
5. इन भक्त कवयित्रियों की कविता तथा मीरा की कविता के अंतर को विश्लेषित कीजिए।

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1. गोदा-कृत तिरुप्पावै, हिंदी रूपांतर, सुशीला अग्रवाल, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
2. Manusi, January-June 1989, Women Bhakta Poets, New Delhi
3. हिंदी को मराठी संतों की देन, आचार्य विनय मोहन शर्मा, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना
4. मीराबाई की पदावली, संपादक, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
5. दक्षिण के संत-1, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास

SOH-IGNOU/P.O. 1T/November, 2014

ISBN : 978-81-266-6819-4